❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

भागवत-पत्रिका

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥	सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ६ { गौराब्द ४७५, मास—मधुसूदन १२, वार—कारणोदशायी
बृहस्पतिवार, ३० चैत्र, सम्वत् २०१८, १३ अप्रैल १९६१ } संख्या ११

श्रीश्रीशचीनन्दन-विजयाष्टकम्

[श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्ती ठाकुर-विरचितम्]

श्रीशचीनन्दनाय नमः

गदाधर ! यदापरः स किल कश्चनालोकितो मयाश्रित-गयाध्वना मधुर-मूर्त्तिरेकस्तदा ।
नवाम्बुद इव ब्रुवन धृत-नवाम्बुदो नेत्रयो-र्लुठन भुवि निरुद्धवाग् विजयते शचीनन्दनः ॥१॥

अलक्षितचरीं हरीत्युदितमात्रतः किं दशा-मसावेति सुधाश्रधीरतुल-कम्प-सम्पादिकाम् ।
वयमहह ! मोदते न पुनरत्र शास्त्रेष्विति शिष्यगण-वेष्टितो विजयते शचीनन्दनः ॥२॥

हाहा ! किमित्युच्यते पठ पठात्र कृष्णं मुहुर्विना तमिह साधुतां दधति किं वृथा ! धातवः ।
प्रसिद्ध इह वर्ण-संघटित-सम्यगाम्नायकः स्वनाम्नि यदति ब्रुवन् विजयते शचीनन्दनः ॥३॥

नवाम्बुज-दले यदीक्षण-सवर्णता-दीर्घते सदा स्वहृदि भाव्यतां सपदि साध्यतां तत्पदम् ।
स पाठयति विस्मितान् स्मितमुखः स्वशिष्यानिति प्रतिप्रकरणं प्रभुर्विजयते शचीनन्दनः ॥४॥

क्व यामि करवाणि किं क्व नु मया हरिर्लभ्यतां तमुद्दिशतु कः सखे ! कथय कः प्रपद्येत माम् ।
इति द्रवति घूर्णते कलितभक्तकंठः शुचा सम्मूर्च्छयति मातरं विजयते शचीनन्दनः ॥५॥

स्मरार्बुद-दुरापया तनु-रुचिच्छटाच्छायया तमः कलितमः कृतं निखिलमेव निर्मूलयन् ।
नृणां नयन-सौभगं दिविसदां मुखैस्तारयन् लसन्नधिधरः प्रभुर्विजयते शचीनन्दनः ॥६॥

अयं कनक-भूधरः प्रणय-रत्नमुच्चैः किरन् कृपातुरतया व्रजन्नभवदत्र विश्वम्भरः ।
यदक्षि-पथ-संचरत् सुरधुनी प्रवाहैर्निजं परञ्च जगदार्द्रयन् विजयते शचीनन्दननः ॥७॥

गतोऽस्मि मथुरां मम प्रियतमा विशाखा-सखी गता नु बत ! किं दशां वद कथं नु वेदानि ताम् ।
इतीव स निजेच्छया व्रजपतेः सुतः प्रापित-स्तदीय-रसचर्वणां विजयते शचीनन्दनः ॥८॥

इदं पठति योऽष्टकं गुणनिधे ! शचीनन्दन ! प्रभो ! तव पदाम्बुजे स्फुरदमन्द-विश्रंभवान् ।
समुज्ज्वल-मतिं निज प्रणयरूपवर्गानुगं विधाय निजधामनि द्रुतमरीकरुष्व स्वयम् ॥९॥

अनुवाद—

एक दिन श्रीचैतन्य महाप्रभुजी अपने प्रिय गदाधरके साथ बातचीतके सिलसिलेमें बोले—'गदाधर ! गयाके मार्गमें मैंने एक परम सुन्दर और अपूर्व मधुर मूर्त्तिका दर्शन किया था ।' जलद गम्भीर स्वरमें यह कहते-कहते ही जिनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित होने लगी थी और जो तत्क्षण पृथ्वी पर अचेतन (बोलनेकी शक्तिसे रहित) होकर गिर पड़े थे, उन श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी जय हो ॥१॥

अहो ! जो अध्ययनका छल कर शिष्य आदिके मुखसे अथवा दूसरे किसी भी बहानेसे 'हरि' इन दो अक्षरोंको सुनते ही, अनुपम कम्प आदिसे युक्त क्या ही एक अपूर्व अनिर्वचनीय दशाको प्राप्त होकर जैसा आनन्द अनुभव करते थे, वैसा आनन्द शास्त्र-अनुशीलनमें नहीं पाते थे, शिष्यों द्वारा घिरे हुए पण्डित समुदायके अग्रणी उन श्रीशचीनन्दन गौरहरि की जय हो, जय हो ॥२॥

जब छात्रोंने धातु-पाठ आरम्भ किया, तब श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने कहा—हाय ! हाय ! मेरे प्यारे बच्चों ! तुमलोग क्या कह रहे हो ? बारम्बार 'कृष्ण-कृष्ण' बोलो । बुद्धिमानों ! 'कृष्ण' के बिना धातु कैसे शुद्धिताको प्राप्त हो सकती है ? यहाँ तक कि जो क, ख आदि वर्णमाला द्वारा भी कृष्णनामका उपदेश प्रदान करते, वे श्रीशचीनन्दन गौरहरि जययुक्त हों ॥३॥

जिनके दोनों नेत्रोंका रूप-रंग और आयतन नव-विकसित कमल-दलके समान है, उन पद्म-पलाशलोचन श्रीहरिका 'पद' सदा सर्वदा हृदयमें चिन्तन करो और शीघ्र उसी 'पद' की साधना करो, व्याकरणके 'पद' की साधना करनेसे क्या फल होगा ?—इस प्रकार जो हँसते-हँसते अपने विस्मित हुए शिष्योंको पढ़ाया करते, वे श्रीशचीनन्दन गौरहरि जययुक्त हों ॥४॥

'सखे ! बतलाओ, कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? कहाँ जानेसे अपने हरिको पा सकूँगा ? कौन मुझे उसका पता बतलावेगा ? मुझे आश्रय भी कौन देगा ?' इस प्रकार कहते-कहते जिनका चित्त द्रवित होने पर जो पृथ्वी पर लोटने लगते और जो कभी-कभी बड़े खेदके साथ भक्तोंका गला पकड़कर माता की तरह मोह उत्पन्न करते, वे श्रीशचीनन्दन गौरहरि जययुक्त हों ॥५॥

जिन्होंने करोड़ों कन्दर्पोंके लिये भी सुदुर्लभ अपनी अंगच्छटा द्वारा मनुष्योंके कलियुगकी मलिनता और अज्ञानरूपी अन्धकारका सम्पूर्णरूपसे विनाश कर दिया है और जिन्होंने अपने अधरोंके माधुर्यसे देवताओंको भी नयनानन्द प्रदान किया है, वे समुज्ज्वल विश्वंभर श्रीशचीनन्दन जययुक्त हों ॥६॥

जो सोनाके पर्वत—श्रीगौरांगदेव असीम करुणा प्रकाश पूर्वक किसी प्रकारका विचार किये बिना ही

प्रसन्नवदनसे सर्व-साधारणको प्रेम-रत्न दान कर अखिल जगत्‌का पालन-पोषण किये थे, इसलिये जिनका नाम विश्वम्भर है और जो अपने नेत्र-पथसे निकले गंगा-प्रवाह द्वारा अपनेको तथा दूसरे को—यहाँ तक कि सम्पूर्ण जगत्‌को निमज्जित किये थे, वे श्रीशचीनन्दन गौरहरि जययुक्त हों ॥७॥

'मैं मथुरापुरीमें आया हूँ, बोलो, बोलो, मेरी प्रियतमा विशाखाकी ऐसी क्या दशा हो गयी है? अहा! उसे मैं कैसे जान सकूँगा?—इस प्रकार जो व्रजेन्द्रनन्दन स्वेच्छापूर्वक विशाखा-सम्बन्धी रसास्वादन प्राप्त होते थे, वे शचीनन्दन गौरहरि जययुक्त हों ॥८॥

हे गुणनिधे! हे प्रभो! हे शचीनन्दन! जो तुम्हारे चरण कमलोंमें प्रगाढ़ श्रद्धापूर्वक इस अष्टकका पाठ करते हैं, तुम स्वयं उस उज्ज्वलचेता परम भाग्यवान् व्यक्तिको अपने प्रिय-पार्षदोंका सेवक कर अपने स्वधाममें स्थान प्रदान करना—यही प्रार्थना है ॥९॥

* * *

कृष्णे मतिरस्तु

संसारमें जब कोई व्यक्ति अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्तिको प्रणाम करता है, तब उसके उत्तरमें श्रेष्ठ व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि 'तुम्हारा कल्याण हो।' इसमें दो बातें अन्तर्निहित होती हैं। एक तो प्रणाम या नमस्कार करनेवाले व्यक्तिके अन्दर यह भावना होती है कि इन श्रेष्ठ व्यक्तिके आशीर्वादसे मेरा धन-जन बढ़े, पुत्र-परिवार सुखी रहें, मैं सांसारिक सुखोंको प्राप्त कर सकूँ। दूसरी ओर श्रेष्ठ व्यक्तिको वह सम्मान भी प्रदान करता है। लोगोंको सम्मान बड़ा प्रिय होता है। सम्मान पाते ही गद्-गद् होकर आशीर्वाद देने लगते हैं—चिरंजीवी हो, कल्याण हो, यश बढ़े, धन-जन बढ़े, निरोग होओ इत्यादि। इन आशीर्वादके वचनोंको सुनकर प्रणाम करनेवाले सांसारी लोग भी अपनेको कृतार्थ समझने लगते हैं। मनोभिष्ट पूर्ण हो, विद्या लाभ हो, शरीर सुखी रहे—यहीं तक आशीर्वादका दौड़ है। देव और द्विजोंके चरणोंमें दण्डवत् करके भी हम 'वरं देहि, धनं देहि, पुत्रं देहि,' आदि नाना प्रकारसे कल्याणकी कामना किया करते हैं।

जो लोग इस जगतमें भगवानकी शक्तिका परिचय है—ऐसा समझते हैं, वे भगवानको एक तात्कालिक अवस्था-विशेष मानकर ब्रह्मकी नित्यता या परमात्माके व्यापकत्वको भगवत्तासे श्रेष्ठ समझते हैं। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि निःशक्तिक ब्रह्म या परमात्माकी जड़शक्तिकी प्रबलता ही सब कुछ है। परन्तु ऐसी-ऐसी कामनाएँ बद्धजीवोंके अपस्वार्थ तक ही सीमित होती हैं। जब तक सारी कामनाएँ अप्राकृत कामदेवकी सेवाके लिये नहीं होतीं। तब तक बद्धजीव सांसारिक कामनाओंकी पूर्तिके लिये ही बेचैन होता है।

संसारमें भ्रमण करता हुआ जीव बड़े सौभाग्यसे सत्संग लाभ करता है। उसीके द्वारा जब वह भगवानके पराक्रमकी कथाओंका श्रवण करता है, उस समय भगवान त्रिविक्रमका स्वरूप उपलब्धि करके अपने अस्तित्वकी रक्षाकी भावना उनके हृदयमें उदित होती है। धीरे-धीरे गुरु-कृष्णकी कृपासे भजनके प्रभावसे भगवद्वस्तुकी नित्यता, भगवद्वस्तुकी पूर्णज्ञानमयता तथा भगवद्वस्तुकी निरवच्छिन्न आनन्दमयताकी उपलब्धि करने पर वे पूर्णकी सेवाके अतिरिक्त और किसी प्रकारकी अभिलाषा नहीं रखते। उन्हें सांसारिक कल्पित कल्याणोंकी आवश्यकता नहीं होती।

जीव अंश है, भगवान पूर्ण हैं । यदि जीव भी पूर्ण होता, तो वह मायाके चक्करमें कदापि नहीं पड़ता । जो लोग सांसारिक भोगोंके पीछे ही सदा दौड़ते रहते हैं, उनकी मति भगवानके श्रीचरण-कमलोंमें भला कैसे लग सकती है । परन्तु सत्संगका सेवन करने पर जब वे यह सुनते हैं कि यह जड़ जगत् सर्वशक्तिमान भगवानकी अचिन्त्य शक्तिका ही कार्य है और 'मैं, जीवात्मा भी—उन्हीं पूर्ण और सर्वशक्तिमानका क्षुद्र अंश हूँ—तब उनके भजन द्वारा पवित्र हुए अन्तःकरणमें सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवान्‌की सर्वशक्तिमत्ता और पूर्णस्वतन्त्रताकी उपलब्धि होती है । उसी समय वह यह भी जान लेता है कि पूर्ण-पुरुषकी सेवा किसे कहते हैं, अर्थात् भक्तिका स्वरूप क्या है ? तात्पर्य यह कि वह जान लेता है कि जीव भगवान्‌का क्षुद्र अंश है तथा भगवानकी सेवा ही मुक्त जीवात्माका नित्य-स्वभाव है । इसीलिये साधु पुरुष जब कभी किसीको आशीर्वाद देते हैं तो यही कहते हैं कि "कृष्णे मतिरस्तु" अर्थात् "कृष्णके चरणोंमें मति रहे ।"

श्रीकृष्णमें मति नहीं रहनेसे जीव श्रीसीतारामकी उपासनामें नियुक्त हो पड़ता है । श्रीसीतारामकी उपासनामें उत्साहका अभाव होने पर श्रीलक्ष्मी-नारायणकी सेवामें रुचि होती है । इसमें भी विघ्न उत्पन्न होने पर जीव पुरुषोत्तम वासुदेवकी सेवाको ही नित्य-धर्म मानता है । इसमें भी बाधा उपस्थित होने पर जीव स्वगत-सजातीय-विजातीय-भेदरहित निर्विशेष ब्रह्मकी ओर अग्रसर होकर अपनेमें शिवत्व या ब्रह्मत्वकी कल्पना करनेका दम भरने लगता है ।

इतने पर भी सन्तुष्ट न होकर जीव प्रकृति-पूजाकी श्रेष्ठता अनुमान कर इसी तरफ बड़े उत्साहसे झुक पड़ते हैं तथा भवानीपतिके वक्षःस्थल पर देवीको उद्दण्ड नृत्य करते देख कर सकाम हो पड़ते हैं ।

हम जड़ दृष्टिसे भौतिक पदार्थोंको देख कर उन्हींकी आलोचना करते हैं तथा उन्हींके सम्बन्धमें हम चेतन-धर्मका व्यवहार भी करते हैं । उस समय जड़वाद, सन्देहवाद, नास्तिक्यवाद, क्लीवविचार, निर्विशेष जड़ाप्रकृतिका विचार—ये सब हमें निगल कर हमारी पूजाकी चेष्टाको नष्ट कर देते हैं और हमें भोगी बना देते हैं । उसी समय हम दूसरोंसे नमस्कार और प्रणाम आदि पानेकी आशासे बैठे रहते हैं ।

कोई-कोई गुरुके आसन पर बैठ कर स्वयं अपने शिष्योंके भी शिष्य बन पड़ते हैं और उनके मनोरंजनके लिये सब कुछ करते हैं । कोई-कोई कुछ अर्थके बदले भगवान्‌के सेवक भक्तोंको भगवानकी सेवासे अलग कर अपनी सेवा ही नियुक्त करते हैं तथा उसे कनक-कामिनी और कांचनका प्रलोभन देकर अपने भोगमें लगाते हैं । कभी-कभी नाम-भजनमें प्रेमोदय नहीं हो रहा है—ऐसा सोचकर नाम-भजन परित्याग कर "यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे" आदि जड़ीय विचारोंको भगवानके कन्धोंपर चढ़ा कर आप मौनी बन जाते हैं और इसीको श्रुतिका प्रतिपाद्य विषय कहते है । कभी-कभी अष्टयोगिनीकी सिद्धिके लिये चक्रमें भैरवीकी पूजामें तत्पर होते हैं ।

प्राकृत सहजियागण "कृष्णे मतिरस्तु" आदि साधुजनोंके आशीर्वादका भूल अर्थ लेकर कृष्णको भोग करनेकी इच्छासे प्राकृत नारीकी पूजामें अपने स्त्रैण विचारको ही अभिधेय (साधन) समझते हैं । ऐसा करना 'कृष्णेमतिरस्तु' का अपव्यवहार करना है । भोग-वासनाग्रस्त व्यक्ति जड़ भोगोंमें आसक्त होनेके कारण 'अनासक्तस्य विषयान' और 'प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या'—इन दोनों श्लोकोंका अर्थ समझ नहीं सकते इसीलिये दयानिधि श्रीकृष्ण चैतन्यदेवने 'युक्त' और 'फल्गु' दोनों वैराग्योंका स्वरूप बतलाकर 'कृष्णे मतिरस्तु' के विचारको बद्धजीवोंके हृदयसे उद्भासित किया है । श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णचैतन्य—भिन्न नहीं हैं । अतएव श्रीचैतन्यका दान ही—श्रीकृष्णका कल्याणदान है ।

— ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

वैराग्य

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ६, संख्या ६-१० पृष्ठ १८८ के आगे]

इस वैराग्य काण्डमें अब मैं श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आज्ञा-वाणियोंकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करता हूँ। श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य खण्ड छठे परिच्छेदमें कहते हैं—

महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य प्रधान।
याहा देखि प्रीत हन गौर भगवान्॥

अर्थात् श्रीमन्महाप्रभुजीके भक्तोंमें वैराग्यकी प्रधानता होती है, जिसे देख कर स्वयं भगवान् श्रीगौरहरि बड़े प्रसन्न होते हैं।

पुनः उसी ग्रन्थके मध्यखण्ड, २३ वें परिच्छेदमें कहते हैं—

सनातनेर वैराग्ये महाप्रभुर आनन्द अपार।

+ + +

युक्त-वैराग्य-स्थिति सब सिखाइल।
शुष्क वैराग्य-ज्ञान सब निषेधिल॥

—श्रीसनातन गोस्वामीका वैराग्य देख कर महाप्रभुजीको अपार आनन्द हुआ। × × × उन्होंने श्रीसनातन गोस्वामीको युक्त वैराग्य (सच्चे वैराग्य) के सम्बन्धमें उपदेश दिया तथा शुष्क वैराग्य—बनावटी वैराग्यको दूर रखनेकी आज्ञा भी दी।

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने भी कहा है—

वैराग्य-विद्या-निज-भक्ति-योग-
शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीचैतन्य-शरीरधारी
कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये॥

—वैराग्य, विद्या और अपनी भक्तियोगकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्ण चैतन्य रूप धारण करनेवाले एक सनातन पुरुष—सदा कृपाके समुद्र हैं, उनके चरणोंमें शरण लेता हूँ।

श्रीमद्भागवत (१२।१३।१८) में भी वैराग्यके सम्बन्धमें उल्लेख है—

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।
यत्र ज्ञान-विराग-भक्ति-सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन् सुपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः॥

इस श्लोकमें भी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी क्रिया द्वारा जो नैष्कर्म्य अर्थात् अप्राकृत क्रिया स्थिति है—कहा गया। वैराग्य—सहज-भक्तिका एक अवान्तर फल है—ऐसा समझ लेने पर फिर वैराग्यके लिये पृथक् रूपमें चेष्टा नहीं हो सकती। जो लोग भक्तिमें प्रतिष्ठित हुए बिना ही वैराग्यका प्रयास करते हैं, उनका जीवन व्यर्थ हो जाता है और अन्तमें नाना प्रकारके व्यर्थके बखेड़ोंमें पड़ कर पतित हो जाता है। जैसे श्रीमद्भागवत ३।२३।५६ में कहते हैं—

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपद सेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥

—संसारमें जिस पुरुषके कर्मोंसे न तो धर्मका सम्पादन होता है, न वैराग्य उत्पन्न होता है और न भगवानकी सेवा ही सम्पन्न होती है, वह पुरुष जीते ही मुर्देके समान है।

देह-यात्रा निर्वाहके लिये जितने भी प्रकारके कर्म किये जा सकते हैं और समाज-यात्राके लिये जो नित्य, नैमित्तिक और सकाम कर्म किये जाते हैं, वे सब यदि धर्मके उद्देश्यसे सम्पादित न हों, तो नितान्त ही हेय हैं; कर्म यदि धर्मके उद्देश्यसे सम्पादित हो, तो उन्हें कर्म न कह कर 'धर्म' कहते हैं। पुनः धर्मका उद्देश्य वैराग्य न हो तो वैसा धर्म भी नितान्त हेय है। दूसरी तरफ वैराग्यके उद्देश्यसे अनुष्ठित धर्म भी

'वैराग्य' ही कहलाता है—धर्म नहीं; फिर वैराग्य भी यदि भगवानकी सेवाके उद्देश्यसे न किया जाय तो, वह भी नितान्त हेय है। ऐसा वैरागी जीवित अवस्थामें भी मुर्देके समान अकर्मण्य है। अतएव महाप्रभुके मतसे भगवद्भक्तिके उद्देश्यसे अर्थात् भक्तिका अवान्तर फलस्वरूप जानकर वैराग्य स्वीकार नहीं करनेसे कल्याण नहीं। अतएव वैराग्य प्रयोजन-तत्त्वकी श्रेणीमें स्थान न पाने पर भी वह संतोंका अवश्य लभ्य धर्म विशेष है। भक्तिमान् पुरुषको वैरागी होना ही होगा। जिनके हृदयमें जितनी भक्ति है, उनके हृदयमें उतना ही सहज वैराग्य है। जहाँ भक्ति तो अधिक मात्रामें देखी जाती है, अथच वैराग्यका अभाव देखा जाता है,तो वहाँ मूल भक्तिके सम्बन्धमें निश्चय ही सन्देह करना होगा। जब भक्ति अधिक प्रबल होती है, तब उनके साथ-साथ वैराग्य भी प्रबल होकर भक्तके संसारका छेदन कर डालता है। पीछे क्रमश: माया बन्धनसे सहज मुक्ति, निर्वाण या ब्रह्मसायुज्य आ उपस्थित होता है। गीतामें भी भगवान् स्वयं कहते हैं—

ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

जड़-सम्बन्धमें निर्वाण या ब्रह्म सायुज्य होनेके साथ-ही-साथ भक्तकी भक्ति भावके रूपमें उदित होती है, उसीका नाम प्रेम भक्ति है। जो मुक्ति उदित हुई, वह भक्तिके अत्यन्त अनुगत होकर संतान या प्रिय सेवककी तरह कार्य करने लगी; अब वैराग्य या मुक्ति एक-एक स्वतन्त्र धर्मके रूपमें लक्षित नहीं होती। जैसे कर्म-समुदाय नैष्कर्म्यके रूपमें पक जानेपर भक्ति हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान और वैराग्य भी अपनी-अपनी क्रियाके परिपाक होने पर भक्तिके साथ सारूप्य प्राप्त कर लेते हैं अथवा क्रमश: भक्तिके साथ सायुज्य लाभ करते हैं। भक्ति नित्य है, अनादि है और अनन्त है। परन्तु कर्म,वैराग्य और विवेक—ये सभी अनित्य हैं, अतएव नित्यधर्ममें मिल जाते हैं। इस प्रकार कृष्णके प्रति प्रेम भक्ति,जीवको कृष्णदास जानकर उनके प्रति भ्रातृभाव, कृष्णसे इतर वस्तुके प्रति वैराग्य और कृष्ण-प्रीतिके कार्योंके लिये कर्मचेष्टा—केवल इनकी ही स्थिति है।

अब कोई-कोई ऐसा भी सोच सकते हैं कि संसारमें रह कर भी यदि वस्तुसिद्धि तक सब कुछ साधित हो सकता है, तब कौपीन आदि ग्रहण कर संसार छोड़नेकी आवश्यकता ही क्या है? निदाघ, ऋभु, जनक, रामानन्दराय और श्रीवास पण्डित आदि की तरह स्त्री-पुत्र लेकर भी यदि प्रेम-भक्तिका साधन किया जा सकता है, तब संसारको त्याग करनेकी आवश्यकता ही क्या है? और यदि आहार तथा कुछ अर्थ संग्रह ही वैराग्यका उद्देश्य है, तब गृहस्थधर्म और वैराग्य-आश्रममें भेद ही क्या रहा? ऐसी शङ्काका उत्तर यह है कि वैराग्य आश्रममें अर्थसंग्रहकी चेष्टा बहुत ही अल्प है, थोड़ेमें ही अभाव दूर हो जाता है; निरन्तर अर्थ-संचयके लिये उद्वेग नहीं रहता। अकिंचन वेशमें अनेक प्रकारके वस्त्रोंका संग्रह आवश्यक नहीं होता। इसीलिये सनातन गोस्वामीने भेक ग्रहण किया था और श्रीचैतन्य महाप्रभुने उनके विषयमें रामानन्दको कहा था—

इँहार जे ज्येष्ठ भ्रातार नाम सनातन ।
पृथ्वी ते विज्ञवर नाहिं तार सम ॥
तोमार जैछे विषय त्याग, तैछे तार रीति ।
दैन्य,वैराग्य,पाण्डित्य, ताहातेइ स्थिति ॥
सनातन कहिल, तुमि याह वृन्दावन ।
तोमार दुइ भाई तथा करियाछे गमन ॥
काँथा करङ्गिया मोर कांगाल भक्तगण ।
वृन्दावन आइसे तार करिह पालन ॥

गृहस्थाश्रममें भक्तिके बलसे वैराग्य साधित होता है, यह बात सत्य है, फिर भी श्रीचैतन्य महाप्रभुने रघुनाथदासको इस प्रकार शिक्षा दी थी—

प्रभु कहे—'कृष्ण-कृपा बलिष्ठ सबा हैते ।
तोमाके काढ़िल विषय-विष्ठा-गर्त हैते ॥
तथापि विषयेर स्वभाव हय महा अंध ।
सेइ कर्म कराय याते हय भवबन्ध ॥

हेन विषय हैते कृष्ण उद्धारिल तोमा।
कहन न जाय कृष्ण-कृपार महिमा॥
(चै० च० अन्त्य ६वें परिच्छेद में)

विशेष अवस्थामें संसारका त्यागकर वैराग्य ग्रहण करना चाहिए--यही महाप्रभुका अभिप्राय है; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। महाप्रभुने सनातन गोस्वामीको फल्गु (बनावटी) वैराग्य छोड़कर युक्त-वैराग्य स्वीकार करनेके लिये जो उपदेश दिया था, उसके विषयमें कुछ आलोचना करनी आवश्यक है। युक्त वैराग्य और फल्गु वैराग्यमें क्या भेद है, जब तक इसे पूरी तरह समझ न लिया जाय, तब तक संशय दूर नहीं हो सकता। श्रीरूप गोस्वामीने युक्त-वैराग्यका यह लक्षण बतलाया है—

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्ण सम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥

और फल्गु वैराग्यका लक्षण—

प्रापञ्चिकतया बुद्धया हरि संम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करने योग्य समस्त विषयोंको कृष्ण-सम्बन्धी जानकर अनासक्त रूपसे उन विषयोंको यथायोग्यरूपमें ग्रहण करनेको 'युक्तवैराग्य' कहते हैं। इन्द्रियाँ स्वभाविक रूपमें विषयोंकी तरफ अवश्य दौड़ेंगी ही। कृष्णार्चन-पद्धति जिसकी पूर्व-महाजनोंने जीव कल्याणके लिये व्यवस्था की है; उन्हीं सब क्रियाओंमें विषयको कृष्णसेवाका उपकरण मानकर ग्रहण करनेसे कृष्ण-संसारमें रहने पर क्रमशः वैराग्य हो सकता है।

पक्षान्तरमें इस प्रकार हरि-सम्बन्धी वस्तुओं और व्यक्तिओंको संसारी विषय मानकर उनसे छुटकारा पानेके लिये जो वैराग्यका मार्ग अवलम्बित होता है—वही फल्गु वैराग्य है। साधनकालमें पहले-पहल संसार-सम्बन्ध त्यागकर साधन कैसे हो सकता है और वह साधन कितने दिनों तक चल सकता है? फल पानेकी तो कोई आशा ही उस साधनमें नहीं है।

भक्तिके क्रम-विकाशका विचार करने पर हम यह देख पाते हैं कि पहले-पहल संसारी जीवको किसी सुकृतिके प्रभावसे कृष्णभक्तिके प्रति श्रद्धा होती है। 'कृष्णभक्ति मेरा नित्यधर्म है, इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए'—ऐसे साधु-उपदेशके प्रति दृढ़ विश्वासका नाम ही श्रद्धा है। ऐसी श्रद्धाके उदय होने पर साधु-गुरुका संग करना चाहिए। सत्सङ्गमें क्रमशः भजन-शिक्षाके पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है। निर्बन्धिनी मति के साथ भजन करने पर थोड़े ही दिनोंमें साधकके सारे अनर्थ दूर हो जाते हैं।

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले।
अपश्यत् पुरुषं पूर्णं मायाञ्च तदपाश्रयाम्॥
यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतञ्चाभिपद्यते॥
अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे।
मायामुग्धस्य जीवस्य ज्ञेयोऽनर्थश्चतुर्विधः।
हृद्दौर्बल्यञ्चापराधोऽसत्तृष्णा तत्त्वविभ्रमः॥
स्वतत्त्वे परतत्त्वे च साध्य-साधन-तत्त्वयोः।
विरोधि विषये चैव [illegible]भ्रमश्चतुर्विधः॥
ऐहिकेष्वैषणा पारत्रिकेषु चैषणाऽशुभा।
भुक्तिवांछा मुमुक्षा च ह्यसत्तृष्णा चतुर्विधाः॥
कृष्णनाम-स्वरूपेषु तदीय चित्कणेषु च।
ज्ञेया बुधगणैर्नित्यमपराधाश्चतुर्विधाः॥
तुच्छासक्तिः कुटिनाटी मात्सर्यं स्वप्रतिष्ठता।
हृद्दौर्बल्यं बुधैः शश्वज्ज्ञेयं किल चतुर्विधम्॥

इन अनर्थोंमें स्वरूप-विभ्रम ही सर्व प्रधान अनर्थ है। श्रीमद्भागवतमें भी बतलाया गया है—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्-
ईशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं-
भक्त्यैकयेशं गुरु देवतात्मा॥

'मैं अमुक शर्मा हूँ, मेरे कर्म, मैं भोग करताहूँ'--इस प्रकार जड़ीय अहंकारसे ही सब दुःख उत्पन्न होते हैं। भजनके प्रभावसे क्रमशः वैसा अहंकार दूर

होता है। इस अहंकारकी क्रमशः निवृत्तिको वैराग्य कहते हैं और पूर्ण निवृत्तिको मुक्ति कहते हैं। अतएव वैराग्य और मुक्ति एक ही तत्त्व हैं। क्रम-विकाशके पथमें पहले वैराग्य और अन्तमें मुक्ति होती है। मुक्त पुरुष ही प्रेमभक्तिके अधिकारी हैं।

इस भयङ्कर संसार-बन्धनको एक ही क्षणमें छेदन करना कठिन है। अतएव कृष्णसे इतर विषयों के प्रति युक्त वैराग्य अवलम्बित हुए बिना भजन नहीं होता और भजन हुए बिना प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होती। जो लोग मनमाने ढङ्गसे सम्पूर्ण-संसार बन्धनका छेदन क्षण भरमें ही करनेकी चेष्टा करते हैं, वे फल्गु वैराग्यका अवलम्बन कर अन्तमें निराशा ही फलके रूपमें प्राप्त होते हैं।

'एवं निर्विषयं चेतः क्रमाद्भवति नान्यथा ।
क्रमं विसृज्य रभसादारुरुक्षुः पतत्यधः ॥

जिन्होंने भजनके क्रम-विकाशको भलीभाँति नहीं समझा है, वे आरुरुक्षु—साधन-मार्गमें ऊपर चढ़ने वाले व्यक्ति कुछ ही दिनोंमें उस अवस्थासे नीचे गिरेंगे ही—यह नैसर्गिक धर्म है। अतएव जो भजन करना चाहते हैं, उनको युक्त वैराग्यका अवलम्बन अवश्य ही करना चाहिए। दो अवस्थाओंमें कौपीन धारण करके घर-बार छोड़ा जा सकता है। पहली अवस्था—भजन हो रहा है, परन्तु घरके लोग उसके भजनमें बाधक होते हों; दूसरी अवस्था—हृदयमें सम्पूर्ण रूपमें संसारके प्रति वैराग्य उदय हो जाय तथा घर-बार अच्छा नहीं लगे। इनमें पहली अवस्था में सद्गुरुके उपदेश और अपनी सद्बुद्धिके द्वारा वास्तव स्थितिका विचार करके ही गृह त्याग करना चाहिए। कृष्ण-भजनका स्वभाव और तात्पर्य समझकर स्थिर मतिसे जो भजन प्रारम्भ करते हैं, वे बहुत ही अल्प समयमें भक्तिपथ पर आगे बढ़ जाते हैं—उनके अनर्थ कुछ-कुछ दूर होने लगते हैं, धीरे-धीरे उनकी श्रद्धा परिपक्व होकर निष्ठा और निष्ठा परिपक्व होकर नैष्ठिकी भक्ति हो पड़ती है।

सद्धर्मस्यावबोधाय येषां निर्बन्धिनी मतिः ।
अचिरादेव सर्वार्थः सिद्धयत्येषामभीप्सितः ॥

भजन चालू हो गया। धीरे-धीरे अनर्थ और भी अधिक परिमाणमें साफ होनेसे भक्ति सम्बन्धी निष्ठा रुचि हो पड़ती है। इस पद्धतिसे भक्ति-सम्बन्धी निष्ठा क्रमशः आसक्ति हो पड़ती है। इसी पद्धितिसे भक्ति-विषयिनी आसक्ति कुछ ही दिनोंमें भावरूपा बन जाती है। इसी पद्धतिसे पूर्व कथित भावरूपा आसक्ति रति हो पड़ती है। यह भाव-रति क्रमशः इसी प्रकार भक्तिरसमें बदल जाती है। यही भक्तिका विकाश-क्रम है। साथ-ही-साथ विरक्ति भी अर्थात् ज्ञान और वैराग्य भी मुक्तिके रूपमें बदल कर कृष्णकी कृपासे भक्तिके स्वरूपमें सायुज्य प्राप्त करते हैं। उस दशामें अखण्ड प्रेम पूर्णचन्द्रकी भाँति उदित होकर अपनी अप्राकृत सच्चिदानन्दरूप ज्योत्स्नाका विस्तार कर साक्षात् व्रजरसको उदय करता है।

भजनके विकाशका स्वरूप क्या है ? इस पर विचार होना आवश्यक है। कृष्ण और उनका सारा परिचय—अप्रकृत, पूर्ण और सच्चिदानन्द-तत्त्व है। जीव इस तत्त्व सूर्यका किरण-कण होकर सम्पूर्ण आनन्द भोग करनेका योग्यपात्र है। वर्तमान अवस्थामें जीव मायाबद्ध है। इस मायाबद्ध अवस्था में जीव अपना स्वरूप, कृष्ण स्वरूप और दोनोंमें परस्परका सम्बन्ध—सब कुछ भूला हुआ है। इस भूलको दूरकर अपने स्वरूपका प्रकाश करनेके लिये जो चेष्टा होती है, उसीका नाम साधन-भजन है। जब स्वरूपका उदय होने लगता है तब उस दशाके भजनको भाव-भजन कहते है तथा उसके सम्पूर्ण उदित होने पर प्रेम-भजन हो पड़ता है।

अप्राकृत तत्त्वकी खोजकी चेष्टाका नाम ही साधन-भजन है। बद्धजीवोंके छिपे हुए अप्राकृत शुद्ध-भावको प्रकट करनेके लिये ही साधनकी आवश्यकता है। ऐसे साधनके बिना जीव अपने छिपे या भूले हुए स्वरूपको फिरसे प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिये कुछ शुद्ध चेष्टा और कुछ कृष्णकी कृपा भी अपेक्षित है। इस पद्धतिको वाणीद्वारा वर्णन करना तथा मन द्वारा चिन्तन करना कठिन है। सुकृति-

सम्पन्न साधक सद्गुरुके भक्तिभाव तथा चरित्र (आचरण) का अनुसरण करता हुआ जब इस संसारके मायिक द्रव्य, देश, काल, शरीर, चिन्तन, गृह, भोजन और वस्त्रादिमें अप्राकृत भावको निश्चित कर भजन करता है, तब वह स्वभावतः ही अकिंचन होकर कृष्णके चरणोंमें शरणागत होकर तथा निष्कपट होकर आत्म-दुःखको निवेदन करता है। उसकी निष्कपट प्रार्थनासे प्रसन्न होकर कृष्ण उस हृदय मैलको साफ कर देते हैं तथा वहाँ अपने अप्राकृत तत्त्वको प्रकाशित कर देते हैं। उस तत्त्वके आलोकसे साधकके अप्राकृत नेत्र खुल जाते हैं—

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूप-
माद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनञ्च ।
वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥
प्रेमाञ्जनच्छुरित-भक्ति-विलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेऽपि विलोकयन्ति।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्य-गुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

इस प्रकार कृपाका दर्शन होने पर वास्तवमें अप्राकृत भजन होने लगता है तथा विकास भी सहज ही होता है। विमुख-चेष्टा, असत्तृष्णा, उदासीनता, जड़ता और असत्संग---ये सब अप्राकृत चेष्टाके मार्गमें महा बाधक हैं। असल बात तो यह है कि प्राकृत चेष्टासे अप्राकृतकी प्राप्ति नहीं होती। कृष्णमें दृढ़ रूपमें मति लग जाने पर अप्राकृत देश, काल और द्रव्यमें भी कृष्णके प्रति दृढ़ चेष्टा रह सकती है। कृष्णमें दृढ़तापूर्वक मति लगनेको कृष्णनिर्बन्धिनी-मति कहते हैं। तदाश्रयमें प्राथमिक भजन होता है, परन्तु प्राथमिक भजनके समय साधु-गुरुकी कृपासे जो लोग कृष्ण-निर्बन्धिनी मति प्राप्त होने की चेष्टा नहीं करते, वे किसी प्रकार भी भजनमें उन्नति नहीं कर सकते। इसलिये विशेष यत्नपूर्वक सद्गुरुका वरण करनेसे ही सिद्धि होती है। असद्गुरुका वरण करनेसे केवल निष्फल लौकिक साधनों की ही प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत (२।३।२४) में श्रीशुकदेव गोस्वामी कहते हैं—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं
यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्र जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥

अब मैं आदर्श वैरागी महात्माओंके आचरणके सम्बन्धमें जो महाजन आचार्योंकी वाणियाँ हैं तथा शास्त्रोंकी शिक्षाएँ हैं, उनका यहाँ उल्लेख करता हूँ—

सुनि तुष्ट हइया प्रभु कहिते लागिल ।
भाल कैला वैरागीर धर्म आचरिला ॥
वैरागी करिवे सदा नाम संकीर्तन ।
मागिया खाइया करे जीवन रक्षण ॥
वैरागी हइया येवा करे परोपेक्षा ।
कार्यसिद्धि नहे, कृष्ण करेन उपेक्षा ॥
वैरागी हइया करे जिह्वार लालस ।
परमार्थ याय, आर हय रसेर वश ॥
वैरागीर कृत्य सदा नाम-संकीर्तन ।
शाक-पत्र फल-मूले उदर भरण ॥
जिह्वार लालसे येइ इति-उति धाय ।
शिश्नोदर-परायण कृष्ण नाहि पाय ॥
ग्राम्यकथा ना सुनिये ग्राम्यवार्ता ना कहिये।
भाल ना परिवे, आर भाल न खाइवे ॥
अमानी मानद कृष्णनाम सदा लवे ।
व्रजे राधाकृष्ण-सेवा मानसे करिवे ॥

श्रीमद्भागवतमें भी—

प्राणवृत्त्यैव सन्तुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः ।
ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत् वाङ्मनः॥

श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणी--

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भव-सागरस्य ।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषिताञ्च
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु ॥

न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद्बहून् ।
न व्याख्यामुपयुंजीत नारंभानारभेत् क्वचित् ॥

(भागवत)

अलब्धे वा विनष्टे वा भक्ष्याच्छादनसाधने ।
अविक्लवमतिर्भूत्वा हरिमेव धिया स्मरेत् ॥
शोकामर्षादिभिर्भावैराक्रान्तं यस्य मानसम् ।
कथं तत्र मुकुंदस्य स्फूर्ति संभावना भवेत् ॥

(पद्मपुराण)

यावता स्यात् स्वनिर्वाहः स्वीकुर्यात्तावदर्थवित् ।

तात्पर्य यह है कि वैराग्य चिह्न—कौपीन धारण करनेके पश्चात् वनवास, भक्तोंके देवालयों या विशुद्ध तीर्थोंमें ही वास करना चाहिए, विषयी लोगोंका सङ्ग छोड़ देना चाहिए, कृष्णकी कृपासे प्रतिदिन जो कुछ मिले उसीसे जीवन-निर्वाह करना चाहिए, जो कुछ मिले उसीसे सन्तुष्ट हो जाना चाहिए, संचय नहीं करना चाहिए तथा किसीके साथ व्यर्थ की बातें न करके दिन-रात कृष्ण कीर्तन करना चाहिए। मृत्यु होने पर शरीरका क्या होगा—इस विषयमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर

उपनिषद्-वाणी

[श्वेताश्वतर–२]

पूर्व-प्रबन्धमें ध्यानको परमात्माके साक्षात्कारका प्रधान उपाय बतलाया गया है। यहाँ उस ध्यानकी प्रक्रिया बतलायी जा रही है। साधक परमात्मासे इस प्रकार प्रार्थना करेंगे—सबको उत्पन्न करनेवाले परमात्मा पहले हमारे मन और बुद्धिकी वृत्तियोंको उनकी प्राप्तिके लिये अपनी ओर आकृष्ट करें तथा हमारी इन्द्रियाँ बाहरी विषयोंसे हट कर मन और बुद्धिकी स्थिरतामें सहायक बनें : हम लोग सदा भगवान्की आराधनामें लगे रहें तथा हम भगवत्-प्राप्ति जनित परमानन्दकी अनुभूतिके लिये पूर्णरूपसे प्रयत्नशील रहें। हमारे मन और इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवताओंको परमानन्द प्राप्तिके लिए प्रयत्नशील होनेके लिये वे परमेश्वर प्रेरणा प्रदान करें। जिन परमब्रह्म परमात्मामें श्रेष्ठ बुद्धिवाले ब्राह्मण आदि अधिकारी मनुष्य अपने मन-बुद्धिको लगाते हैं, जो एक, अद्वितीय, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और महान् हैं, उनकी हमलोग स्तुति कर सकें। मन और बुद्धि, दोनोंके स्वामी और समस्त जगत्के कारण परब्रह्म परमात्माको बार-बार नमस्कार करके विनयपूर्वक हमलोग उनकी शरण लेते हैं। मेरे द्वारा की गयी स्तुति सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त हो जाय।

अरणियोंके मन्थन द्वारा अग्नि प्रकट करनेके समान शरीरको नीचेकी अरणि और भगवन्नामको ऊपरकी अरणि बना कर जप और चिन्तन रूप मन्थन द्वारा अर्थात् श्रीभगवानके शरणागत होकर उनका नाम जप करते-करते हमारा मन सम्पूर्णरूपसे पवित्र हो जाता है। उनके शरणागत होकर उक्त प्रकारसे साधन करनेपर हमारे पूर्व संचित कर्मोंका फल नष्ट होने पर संसार-बन्धन ढीला पड़ जाता है।

साधनके समय साधकको चाहिए कि वह आसन जमा कर सुखपूर्वक सिर, गर्दन और छातीको ऊँचा उठाये रखे, इधर-उधर झुकने नहीं दे। शरीरको सीधा और स्थिर रखे। ऐसा रखनेसे आलस्य, निद्रा और चित्त-विक्षेप आदि विघ्नोंसे बचा जा सकता है। इसके बाद समस्त इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे हटा कर अन्तर्मुखी करना चाहिए अर्थात् यदि प्रत्येक इन्द्रियको परमेश्वरकी सेवामें नियुक्त किया जाय तो साधन

अतिशय सुगम और सरल हो पड़ता है। इस दशामें प्रणवरूप भगवन्नामका आश्रय लेकर परमेश्वरका ध्यान करनेसे सारी बाधाएँ दूर हो पड़ती हैं। नाना-प्रकारकी योनियोंमें भ्रमण करानेवाली जितनी भी वासनाएँ हैं, वे सब जन्म-मृत्यु रूप भय देनेवाले स्रोत हैं। इन सबका त्याग करके सदाके लिये अमर पदको प्राप्त कर लेना चाहिए।

ध्यानयोगका साधन करनेवाले साधकको ऐसे स्थानमें अपना आसन लगाना चाहिए जहाँकी भूमि समतल हो, शुद्ध हो और पवित्र हो। इसके लिये कोई देवालय या तीर्थस्थान ही परम उपयुक्त स्थान है। जहाँ पर कूड़ा-कर्कट, मैला, कंकड़ या बालू न हो और अग्नि या धूपकी गर्मी न हो; जहाँ कोई मनमें विक्षेप करने वाला शब्द न होता हो अर्थात् कोलाहल न हो; समीप ही आवश्यक जल प्राप्त हो सके, परन्तु ऐसा जलाशय न हो, . जहाँ बहुत लोग आते जाते हों; जहाँ शरीरकी रक्षाके लिये उपयुक्त आश्रय हो परन्तु ऐसी कोई धर्मशाला आदि न रहे जहाँ बहुतसे लोग ठहरते हों; तात्पर्य यह है कि वहाँ अधिक भीड़-भाड़ न हो, जिससे ध्यानमें विघ्न पड़े और जहाँका दृश्य नेत्रोंको पीड़ा पहुँचाने-वाला न हो—इन सब विचारोंके सर्वथा अनुकूल किसी गुफा आदि वायु शून्य एकान्त स्थानमें उपरोक्त ढङ्गसे आसन लगाकर मनको परमात्माके ध्यानमें लगानेका अभ्यास करना चाहिए।

जब साधक परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिके लिये ध्यान योगका साधन आरम्भ करता है, तब उसके सामने कभी कुहरेकी तरह, कभी धूआँ-सा, कभी सूर्य और अग्निके प्रकाशके समान दीख पड़ता है, कभी निःशब्द वायुके सदृश, कभी जुगनू के सदृश टिमटिमाहट सी दीख पड़ती है, फिर कभी बिजली-की भाँति चकाचौंध पैदा करनेवाली चमक दिखलायी देती है, तो कभी चन्द्रमाकी भाँति शीतल प्रकाश भी दीख पड़ता है। ये सब योग साधनकी उन्नतिके द्योतक हैं। ध्यान योगका साधन करते-करते जब आकाश आदि पंचभूतोंके ऊपर अधिकार हो जाता है अर्थात् पंचभूत-विषयक पंचसिद्धि प्रकट होती है तब उस समय योगाग्निमय शरीरमें रोग, शोक, वार्द्धक्य, मृत्यु आदिकी सम्भावना नहीं रहती। पूर्वोक्त पंचसिद्धिके अतिरिक्त उसका शरीर हल्का हो जाता है, शरीरमें भारीपन अर्थात् आलस्यका भाव नहीं रहता। वह सदा ही निरोग रहता है, उसे कभी कोई रोग नहीं होता। भौतिक पदार्थोंमें उसकी आसक्ति नष्ट हो जाती है। शरीरका वर्ण उज्ज्वल हो उठता है। स्वर अतिशय मधुर हो जाता है। शरीरमें से एक बहुत ही अच्छी गन्ध निकलने लगती है। मल-मूत्रकी मात्रा अल्प हो जाती है। ये सब योग मार्गकी प्रारम्भिक सिद्धियाँ हैं।

जिस प्रकार कोई तेजोमय रत्न मिट्टीसे लिप्त रहनेके कारण छिपा रहता है—मैला दीखता है, परन्तु धो-पोंछकर साफ करने पर वह चमकने लगता है, उसी प्रकार स्वच्छ आत्मा अनेक जन्मोंमें किये हुए संस्कारोंसे आवृत्त रहनेके कारण प्रत्यक्ष नहीं होता; परन्तु ध्यान योग द्वारा साधन करनेसे मलीनता दूर होनेपर आत्माका प्रकाश होता है, तथा सारे दुःखोंका अन्त हो जाता है। उस समय साधक कृत-कृत्य हो जाता है। उसके पश्चात् जब प्रदीपकी भाँति निर्मल प्रकाशमय पूर्वोक्त आत्मतत्त्व द्वारा ब्रह्मतत्त्व-को भली भाँति अनुभव कर लेता है, तब साधक सब प्रकारके बन्धनोंसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है।

वे परमब्रह्म समस्त दिशाओंमें व्याप्त हैं अर्थात् सर्वत्र परिपूर्ण हैं। जगत्‌में कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जहाँ वे न हों। वे सबसे पहले हिरण्यगर्भ रूपमें प्रकट होते हैं। वे ही ब्रह्माण्डरूप गर्भमें अन्तर्यामी (गर्भोदशायी) रूपमें स्थित हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंमें वर्तमान हैं। वे समदर्शी हैं। वे अग्निमें, वायुमें, समस्त लोकमें तथा औषधि और वनस्पतियोंमें सर्वत्र विराजमान हैं। उन परमेश्वरको हम नमस्कार करते हैं। जो एक अद्वितीय परमेश्वर जगत् रूप जालकी रचना कर अपने शासन-

प्रभावसे समग्र जगतका शासन करते हैं, समस्त लोकों और लोकपालोंका संचालन करते हैं, जो अकेले ही बिना किसीकी सहायता लिये समस्त जगतकी उत्पत्ति और उसका विस्तार करनेमें सर्वथा समर्थ हैं, उनको तत्त्वत: जान लेने पर जीव जन्म-मृत्युके बंधनसे छूटकर अमर हो जाते हैं।

उनका दूसरा नाम रुद्र है। वेदान्तके पहले अध्यायके चौथे पादमें ऐसा कहा गया है कि समस्त शब्द ही ब्रह्मके वाचक हैं। तात्ववेय श्रुतिमें सब नामोंको कृष्णका नाम कहा गया है। ब्रह्माण्डपुराणमें कहा गया है—

रुजं द्रावयते यस्माद् रुद्रस्तस्माज्जनार्दन ।
ईशनादेव वेशानो महादेवो महत्त्वत: ॥
पिबन्ति ये नरा नाकं मुक्ता: संसार-सागरात् ।
गदाधरो यतो विष्णुः पिनाकीति तत: स्मृत: ॥
शिव: सुखात्मकेन सर्वसंरोधनाद्धर: ।
कृत्स्नात्मकमिदं विश्वं यतोवास्ते प्रवर्त्तयन् ॥
कृत्तिवासस्ततो देवो विरिञ्चिश्च विरेचनात् ।
बृंहणाद् ब्रह्मनामासौ ऐश्वर्यादिन्द्र उच्यते ॥
एवं नाना विधैः शब्दै एक एव त्रिविक्रम: ।
वेदेषु सुपुराणेषु गीयते पुरुषोत्तम: ॥

रुज अर्थात् संसारकी पीड़ाका हरण करते हैं, इसलिये वे रुद्र कहलाते हैं। सबके ईश होनेके कारण ईशान हैं। सबसे महान् होनेके कारण महादेव हैं। सब प्रकारसे सुखमय होनेके कारण शिव हैं। सबका संरोधन करते हैं, इसलिये 'हर' कहलाते हैं। विश्वकी सृष्टि करके उसमें वास करते हैं, इसलिये कृत्तिवास हैं। विरेचन अर्थात् संसार रूपी मलका नाश करनेके कारण विरिंचि कहलाते हैं। बृंहन अर्थात बढ़ने वाले होनेके कारण ब्रह्म और ऐश्वर्यशाली होनेके कारण इन्द्र कहलाते हैं। इस प्रकार नानाविध शब्दोंसे एक मात्र एक परमब्रह्म परमेश्वर—त्रिविक्रम का ही वेद और पुराणोंमें गान किया गया है।

वे परमेश्वर अपने स्वरूपभूत विविध शक्तियों द्वारा समस्त लोकोंका नियमन करते हैं। उनकी अनन्त शक्तियाँ हैं, परन्तु उनमें भेद नहीं है। इन समस्त लोकोंके रचयिता परमेश्वर प्रलय कालमें समस्त वस्तुओंको अपनेमें विलीनकर अकेले विराजमान रहते हैं। वे एक होने पर भी उनकी आँखें सर्वत्र हैं---इसलिये वे विश्वतश्चक्षु हैं। सर्वत्र मुख है, इसलिये वे विश्वतोमुख हैं, सर्वत्र बाहु और चरण हैं, अतएव वे विश्वतोबाहु और विश्वतस्पाद् हैं। तात्पर्य यह है कि वे एक स्थान पर स्थित होकर भी सर्वज्ञ होनेके कारण एक ही साथ सब जगहोंमें, सब समयोंमें समस्त प्राणियोंके समस्त कर्मोंको देखते हैं। उनके लिये कुछ भी अगोचर नहीं है। वे अनेक विरुद्ध धर्मोंके आश्रय हैं। उनके प्रेमीभक्त जहाँ भी जब भी जो कुछ उनको भक्तिपूर्वक अर्पण करते हैं वे ग्रहण करते हैं--खाते हैं। वे सब जगह समस्त वस्तुओंको एक साथ ग्रहण करनेमें समर्थ हैं। वे अपने आश्रितोंके समस्त प्रकारके संकटोंको दूर करनेमें समर्थ हैं। संसार भरमें ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहाँ उनकी शक्तिका अस्तित्व न हो। वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर मनुष्यको दो बाहु और पक्षियोंको दो पंख प्रदान किये हैं अर्थात् पृथ्वीके समस्त प्राणियोंको जो कुछ भी प्राप्त है, वह सब कुछ उन्होंने ही दिये हैं।

वे परमेश्वर ही इन्द्रादि देवताओंके सृष्टिकर्त्ता हैं। जो सबके अधिपति हैं, महान् हैं, ज्ञानी हैं, वे सर्वज्ञ परब्रह्म परमेश्वर हमें शुभ बुद्धि प्रदान करें।

हे रुद्ररूपी परमेश्वर! आपकी भयानकता रहित, पुण्य कर्म द्वारा प्रकाशित कल्याणमयी सौम्य मूर्त्तिका दर्शन कर हमलोग परमानन्द सागरमें निमज्जित हो पड़ते हैं। हे गिरिशन्त अर्थात् पर्वत पर निवास करनेवाले सर्वसुखप्रद परमेश्वर! आप अपनी उसी परम् शान्तमूर्त्तिका दर्शन करावें। आपकी कृपादृष्टि से हमलोग सर्वथा पवित्र होकर आपको प्राप्त होनेकी योग्यता लाभ करेंगे।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीव्यास पूजाके उपलक्ष्यमें

श्रीमद् श्रौतीमहाराज का भाषण

आज हम लोगोंके गुरु-पूजाका दिन है। फूल, चन्दन, देकर गुरु पादपद्मोंकी पूजाका बाह्यिक अनुष्ठान समस्त शिष्य ही किया करते हैं—किन्तु वास्तविक रूपसे गुरु पादपद्मकी पूजा हुई या नहीं—यह विवेचनीय विषय है।

पूज्य और पूजकका सम्बन्ध-ज्ञान जब तक नहीं होता, तब तक पूजाकी सिद्धि नहीं होती। हमने गुरुपादपद्मोंमें रहकर जो शिक्षा प्राप्तकी है उससे देखता हूँ कि आज ३८ वर्ष तक गुरुपादपद्मोंमें अञ्जलि देता आया हूँ, किन्तु जिसको यथार्थ पूजा कहते हैं वह मेरे द्वारा अभी तक हो नहीं रही है। क्योंकि मैंने अपना अपनत्व अपने हाथोंमें अलग ही सुरक्षित रखा है। सम्पूर्ण भावसे शरणागत न होने पर तन-मन वचन, अर्थ बुद्धि सब कुछ यदि गुरुपादपद्मोंमें अर्पित न कर सका तो वह पूजा नहीं हुई।

> येषां स एव भगवान दययेदनन्तः
> सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम्।
> ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां
> नैषां ममाहमितिधीः श्व शृगालभक्ष्ये॥

यदि सर्वतोभावसे गुरुपादपद्मोंमें शरणागत न हुआ जाय अर्थात् उपरोक्त तन-मन-वचन बुद्धि आदि सब कुछ अर्पण न करनेसे शरणागत नहीं हुआ जाता। वैसा होने से निरर्थक परिश्रम ही होता है। अभी तक मैंने जैसा अनुष्ठान किया है वैसा ही कपटतापूर्ण अनुष्ठान यदि अब भी होता रहा तो अनन्तदेवकी कृपा नहीं हो सकती। गुरुदेव भगवान के प्रतिनिधि हैं। गुरुदेवके चरणोंमें आत्म-समर्पण करने पर—गुरुदेवकी सेवामें सम्पूर्ण भावसे अपने को न्योछावर कर देने पर अनन्तदेवकी ही सेवा होगी। किन्तु वह सेवा निष्कपट रूपसे होनी चाहिये। यदि ऐसा हुआ तो सेवकको मायासे उद्धार प्राप्त होनेकी चिन्ता बिलकुल नहीं रहेगी। देवमाया जिस पर विजय पाना बड़ा ही कठिन है, वह अनायास ही दूर हो जायगी। तब गीदड़ और कुत्तों द्वारा खायी जाने वाली देहमें "मैं" और "मेरा" की बुद्धि नहीं रहती। तब उस समय वह ऐसा नहीं चिल्लाया करता कि गुरुदेव मेरे विषयमें नहीं समझते; मेरा शरीर दिन-प्रतिदिन खराब होता जा रहा है, गुरुदेव उस विषयमें ध्यान नहीं देते। केवल 'सेवा करो', 'सेवा करो' कहा करते हैं!

यहाँ पर हम महाभारतके आदि पर्वमें वर्णित उपमन्यु आदिकी सेवाकी बात सुनने पर आश्चर्य-चकित होंगे। उन्होंने बड़ी ही कठोर सेवाका उच्च आदर्श दिखलाया है—

प्राचीन कालमें एक ब्रह्मज्ञ ऋषि थे, उनका नाम आयोदधौम्य था। उपमन्यु इन्हींका प्रिय शिष्य था। गुरुदेवने उपमन्युके ऊपर गोरक्षाका भार सौंप रखा था। शिष्य दिनभर गायोंको चराता और शामको फिर आश्रममें उनको लौटाकर स्वयं गुरुदेवके चरण-कमलोंमें प्रणाम करता।

एक दिन गुरुजीने शिष्यसे पूछा—उपमन्यु! तुम किस प्रकारसे अपनी जीविका निर्वाह करते हो?

शिष्यने बड़ी ही नम्रता पूर्वक उत्तर दिया—देव! 'मैं भिक्षावृत्ति द्वारा जीविकाका निर्वाह करता हूँ।'

उपमन्युकी बात सुनकर गुरुदेवने आदेशके स्वर में कहा—वत्स! भिक्षामें जो कुछ मिले, उसे मेरे पास लाकर देना ही उचित है। आजसे मेरी आज्ञा बिना उसमें से कुछ भी ग्रहण न करना।'

'अच्छा', कहकर उपमन्यु रोजकी भाँति गोचारणको चला गया। उस दिनसे जो कुछ भिक्षा मिलती उसे आचार्यके चरण-कमलोंमें समर्पण कर देता।

कुछ दिन बीत जाने पर एक दिन फिर गुरुदेवने कहा---उपमन्यु ! तुम्हें तो अब भी खूब हृष्ट-पुष्ट देख रहा हूँ, तुम आजकल क्या खाते हो ?'

उपमन्युने हाथ जोड़कर उत्तर दिया---देव ! पहली बारकी भिक्षा आपको देकर पुनः दूसरी बार भिक्षा करता हूँ और उसे खाकर ही अपना जीवन धारण करता हूँ।

उसे सुनकर गुरुदेव बोले---यह गुरुकुल वासियों के उपयुक्त आचरण नहीं है। इससे यह प्रकट होता है कि तुम बड़े लोभी हो। 'अच्छी बात है, मैं आजसे ऐसा नहीं करूँगा'---कहकर शिष्य गौओंको लेकर बनमें चला गया। और भी कुछ दिनके बाद शिष्यको पहलेकी तरह देखकर गुरुजीने पूछा—'उपमन्यु ! तुम अब क्या खाते हो ?"

उपमन्युने कहा—"आजकल मैं केवल गोदुग्ध पान करता हूँ।"

गुरुदेवने कहा—मेरी अनुमतिके बिना कभी भी दूध मत पीना।

'तथास्तु' कहकर उपमन्यु उस दिन भी विदा हुए।

कुछ दिनोंके बाद गुरुदेव एक दिन उपमन्युको प्रणाम करते हुए देखकर फिर पूछा—"उपमन्यु ! तुम तो अब भी खूब हृष्ट-पुष्ट हो. क्या खाते हो ?"

उपमन्युने कहा—"देव ! जब बछड़े अपनी माँका दूध पीने लगते हैं, तब उनके मुँहसे जो फेन बाहर होता है, मैं वही फेन खा लेता हूँ।"

उपाध्यायने कहा—तुम फेन पान करके बछड़ोंकी वृत्तिमें बाधा प्रदान करते हो; यह नितान्त अन्याय है।

यह सुनकर उपमन्युने फेन खाना भी बन्द कर दिया। किन्तु गौओंको चराते-चराते वन-वनमें भ्रमण करनेसे उसे बड़ी भूख लगी। तब भूखसे व्याकुल होकर उसने कुछ आकके पत्ते खा लिए। आकके पत्तोंको खाते ही वह तत्क्षण अन्धा हो गया। ऐसी दशामें शामको घर लौटते समय वह एक कूँए में गिर गया। सूर्यास्त हो गया, किन्तु उपमन्यु घर नहीं लौटा। तब गुरुदेवके मनमें संदेह हुआ। वे शिष्य उपमन्युके लिए बड़े दुःखी हुए और उसे ढूँढनेके लिये बाहर हुए। रात हो गई थी। वे अपने दूसरे शिष्योंके साथ बन-बनमें 'उपमन्यु' 'उपमन्यु' पुकारने लगे। निकट आने पर गुरुदेवकी पुकारको सुनकर उपमन्युने कुँएके भीतरसे ही आवाज दी—'प्रभो ! मैं कुँएमें गिर गया हूँ।' कुँएमें गिरने का कारण पूँछे जाने पर उपमन्युने आकके पत्तोंको खानेकी बात बताई। गुरुदेवने शिष्यकी केवल सेवानिष्ठाकी परीक्षाके लिए ही ऐसा किया था। शिष्यको उस परीक्षामें उत्तीर्ण पाकर उसके प्रति दयासे भर करके कहने लगे—वत्स ! तुम देववैद्य अश्विनीकुमारका स्मरण करो। वे तुमको चक्षुदान करेंगे।

उपमन्यु अश्विनीकुमारकी स्तुति करने लगा। वे संतुष्ट हो वहाँ आविर्भूत होकर कहने लगे—उपमन्यु ! तुमको एक औषध (पिष्टक) दे रहा हूँ, उसको खाने से तुम्हारे नेत्र ठीक हो जाँयगे।

उपमन्युने उत्तर दिया—गुरुदेवको बिना निवेदन किये मैं कुछ भी खा नहीं सकता हूँ।

अश्विनीकुमार बोले—मैंने तुम्हारे गुरुदेवको भी पहले ऐसी ही औषध दी थी; तुम भी उनका अनुकरण करो। उपमन्युने गुरुदेवको वह औषध निवेदन करके खाई। उपमन्युकी गुरु निष्ठा देखकर अश्विनीकुमार बड़े प्रसन्न हुए और बोले—तुम्हारा हिरण्यमय दाँत होगा, अर्थात् तुम शिष्यके प्रति दयालु होंगे; कभी भी निर्दय न होंगे। हम लोग तुमको चक्षु प्रदान कर रहे हैं। तुम्हारा कल्याण हो।

अश्विनीकुमारके वरसे अपने नेत्रोंको फिरसे प्राप्त करनेकी पूरी घटना शिष्यने गुरुदेवके चरण-कमलोंमें निवेदन की। गुरुदेव बड़ी प्रीतिके साथ कहने लगे---वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो। समस्त वेद और धर्मशास्त्र तुम्हें सर्वदा याद रहेंगे ! ऐसा कहकर गुरुने शिष्य उपमन्युको विदा किया।

श्रीमद्भागवतमें भी है—‘ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुह्यमप्युत” अर्थात् गुरुदेव अपने निष्कपट विश्वासी शिष्यके निकट ही शास्त्रोंके गूढ़ रहस्यको प्रकट करते हैं।

मेरे गुरुदेवने छः प्रकारके अधम सेवकोंकी बात बतलायी है—

> आलिर्ज्योतिषिको बाणः स्तब्धीभूतः किमेकाकी ।
> प्रेषितप्रेषकश्चैव षड्विधा सेवकाधमाः ॥

१. आलि सेवक—भ्रमर जिस प्रकार गुन-गुन करता है, उसी प्रकार जो सेवक गुरुकी आज्ञा पाकर मन ही मन गुनगुनाता है कि मैं ही ऐसा क्यों करूँ? और भी तो अन्य व्यक्ति हैं। गुरुदेवने बिना सोचे समझे ही ऐसा अन्याय आदेश दिया है—ऐसा कहता हुआ सेवा करे—वह आलि सेवक कहलाता है।

२. ज्योतिषि सेवक—सेवकको किसी कार्यकी आज्ञा दी गई—वह पहले से ही अपना एक सिद्धान्त बना लेता है अर्थात् किसी स्थान पर जानेका आदेश हुआ है तो वह जानेसे पहले ही भविष्यत् वाणी कर कुछ न कुछ उत्तर दे ही देता है कि अभी वहाँ जाने से काम नहीं बनेगा, शायद वह घर पर नहीं होगा। ऐसा सेवक ज्योतिषि सेवक कहलाता है।

३. बाण सेवक—जैसे तीर छूटने पर फिर वापिस नहीं आता, उसी प्रकार बाण सेवक भी किसी काम पर भेजे जाने पर वापिस नहीं लौटता।

४. स्तब्धीभूत सेवक—जो शिष्य किसी काम के लिए आज्ञा पाकर भी स्तब्ध—चुपचाप रहते हैं, न उत्तर देते हैं और न आज्ञा का पालन ही करते हैं, वे स्तब्धीभूत सेवक हैं।

५. किमेकाकी सेवक—आदेश होने पर जो सेवक यह कहता है कि—क्या मैं यह कार्य अकेला कर सकता हूँ? साथमें एक व्यक्तिको न भेजनेसे काम नहीं होगा, ऐसे सेवकोंको किमेकाकी सेवक कहते हैं।

६. प्रेषित-प्रेषक सेवक—अर्थात् गुरुदेवने एक शिष्यको किसी कार्यके लिए आदेश दिया। वह उस कामको स्वयं न कर किसी दूसरेको करनेके लिए कहे—उसे प्रेषित-प्रेषक सेवक कहते हैं।

उपरोक्त छःहों प्रकारके सेवक एकान्त भावसे शरणागत न होनेके कारण अधम हैं।

उपमन्युने जागतिक विद्या शिक्षाके लिए गुरु-सेवाका जो आदर्श दिखलाया है, पारमार्थिक छात्रको पारमार्थिक शिक्षाके लिए तो उससे भी उच्च आदर्श अपनाना होगा। प्रयोजन तत्त्व निश्चित हो जाने पर आलस्य, जड़ता, अविद्या या देह-गेहकी ममता सब कुछ दूर हो जाता है। यदि वास्तवमें कृष्ण-कृपाकी प्राप्ति ही हमारा प्रयोजन-तत्त्व है तो श्रीशुकदेव गोस्वामीका आनुगत्य ही करना हमें उचित है।

श्रीशुकदेवजी व्यासदेवके अरणि-मंथनके समय प्रकट हुए थे। कृष्ण द्वैपायन व्यासदेवने अग्नि प्राप्त करनेके लिये अरणि-मंथन किया था। अकस्मात् वहाँ पर घृताची नामक एक अप्सराका आगमन हुआ। उसको देखकर व्यासदेवका चित्त दयार्द्र हो उठा। परन्तु अरणि-मंथनका त्याग नहीं किया। घृताचीने व्यासदेवकी कृपासे शुकपक्षीका रूप धारण किया। किन्तु घृताचीका सौंदर्यादि व्यासदेवके स्मृति पटसे दूर न होनेके कारण अरणि-मंथनके समय उस अरणिसे ही शुकदेवका जन्म हुआ। इसीलिये शुकदेव अग्निके समान तेजस्वी हुए। महानुभव श्रीशिवजीने सद्यजात शुकदेवको संस्कारादिसे सम्पन्न किया। देवराज इन्द्रने कमण्डलु दिया। शुकदेवजी व्रत धारण करके एकाग्रचित्तसे ध्यानमें मग्न रहने लगे। तदनन्तर बृहस्पतिके निकट वेदवेदांगादिका विधिवत् अध्ययन कर उन्होंने उग्र तपस्या आरम्भ की। उनका चित्त गार्हस्थ्य-धर्मकी ओर कभी आकृष्ट नहीं हुआ। उन्होंने अपने पिताके निकट मोक्ष-धर्मके उपदेशके लिये प्रार्थना की। व्यासदेवने शुकदेवको राजर्षि जनकके पास जानेकी आज्ञा दी।

शुकदेव पैदल चलकर बहुतसे देशोंका भ्रमण

करते-करते मिथिला राज्यके एक उपवनमें पहुँचे। उस मार्गमें बहुतसे नर-नारी, हाथी, घोड़े, रथादि चल रहे थे, किन्तु शुकदेवने उस ओर आँखें उठाकर देखा तक नहीं। वे राजमहलके द्वार पर ध्यान-मग्न होकर खड़े रहे। द्वारपालोंने कठोर वचनोंसे उनको भीतर प्रवेशके लिये निषेध किया। वे क्रोधरहित भूख-प्यासके बिना कातर हुए तथा पथ-श्रमसे बिना थके हुए की भाँति चुपचाप खड़े रहे। इतना ही नहीं, वे सूर्यकी प्रखर किरणोंके तापसे भी विचलित नहीं हुए। उनकी ऐसी अवस्था देखकर एक द्वारपालने उनको राजभवनके प्रथम प्रकोष्ठमें प्रवेश करा दिया। वे वहाँ भी धूप और छायाको समान समझकर मुक्ति की चिन्तामें ही लगे रहे। राजमन्त्रीने ऐसा देखकर उनको द्वितीय प्रकोष्ठमें पहुँचा दिया। वहाँ उनको आसन आदि देकर सत्कारके साथ बैठाया तथा उनकी सेवाके लिये अनेक नवयुवतियोंको नियुक्त कर वे स्वयं वहाँ से चले गये। सर्व-सुलक्षणों और नवयौवनसे सम्पन्न ५० वेश्याएँ बड़े प्रेमसे उनकी सेवा करने लगीं। उन्होंने शुकदेवजीको देवभोग्य पदार्थ और शय्यादि प्रदान किया। शुकदेवजीने अपना आवश्यक कृत्य सम्पन्न किया। परन्तु रमणियों द्वारा घिरे रहने पर भी वे लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए; वे पूर्ववत् ध्यानमें मग्न हो गये।

इसी प्रकार कुछ दिन बीतने पर राजर्षि जनक उनके पास आये और उनका यथायोग्य सत्कार कर उनके आगमनका कारण पूछा। शुकदेवजीने उत्तर दिया—पिताजीकी आज्ञासे राजर्षिके निकट मोक्ष-धर्मके सम्बन्धमें उपदेश श्रवण करनेके लिये आया हूँ। राजर्षि जनकने कहा—ज्ञान-विज्ञानके बिना मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। गुरूपदेशके बिना ज्ञान लाभ सम्भव नहीं है। गुरुदेव ज्ञानरूपी नौकाके द्वारा शिष्यको संसार-सागरसे पार कर देते हैं। जिनका ब्रह्मचर्य आश्रममें ही अन्तःकरण शुद्ध हो चुका है, उनके लिये दूसरे आश्रमकी आवश्यकता नहीं है। जिसका चित्त स्थिर हो गया है, वे अपनेको स्वयं देखते हैं। जिससे दूसरे भयभीत नहीं होते, जो कभी किसीसे भयभीत नहीं होता, जिसमें ईर्ष्या और द्वेष नहीं है, वे ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं। ईर्ष्या, काम और मोहका त्याग करके मनके साथ आत्माका संयोग करने पर ही ब्रह्म तत्त्वकी उपलब्धि होती है। जिस समय जीव समदर्शनको प्राप्त होता है, दुःख-सुख आदिको एक समान जानकर उनको सहनेमें समर्थ होता है, निंदा-स्तुति, सोना और लोहा, सर्दी और गर्मी, अर्थ और अनर्थ, प्रिय और अप्रिय, जीवन और मरणमें जो समभाव दर्शन करता है, वही ब्रह्मभावको प्राप्त हो सकता है। हे ज्ञानी प्रवर! आपमें ये सब बातें हैं। आपको और कुछ भी सीखना बाकी नहीं है। आपने मुझसे भी बढ़कर ज्ञान-विज्ञान और गति प्राप्त कर ली है। आपमें विषय-वासना नहीं है; नाच-गानमें आपका चित्त आकृष्ट नहीं है। बन्धु-जनोंके लिये अनुराग नहीं। आप लोहा और स्वर्णमें समभाव रखते हैं। मैं आपको अक्षय और अनामय पथ पर चढ़ते हुए देख रहा हूँ, आप धन्य हैं।

इस प्रकार शुकदेवके मतानुसार जो जड़ विषयोंमें ममता और अनुरागका परित्याग करते हैं और समदर्शी होकर गुरुकृपाका अवलोकन करते-करते निर्दिष्ट पथ पर अग्रसर होते हैं, वे ही धन्य होंगे। दूसरी तरफ परमार्थके नाम पर तुच्छ विषय, लाभ पूजा, प्रतिष्ठाके प्रति आकृष्ट होनेवाला अनर्थ सागरमें गोता लगाता हुआ नरककी यात्रा करता है। इसलिये साधु सावधान!

आज जिनकी प्रकट तिथिकी पूजाके अवसर पर हम एकत्रित हुए हैं, उनका परिचय यह है—

वैराग्ययुग् भक्तिरसं प्रयत्नैरपाययन्मामनभीप्सुमन्धम् ।
कृपाम्बुधिर्यः परदुःख-दुःखी सनातनं तं प्रभुमाश्रयामि ॥

पशु-चिकित्सक जिस प्रकार जबरदस्ती पशुका मुँह खोलकर औषधि देता है, उसी प्रकार हरिभजनमें अनिच्छुक मुझ जैसे अज्ञानी व्यक्तिको भी जिन्होंने बड़े प्रयत्नसे वैराग्य युक्त भक्तिरसकापान कराया है,

जिन्होंने मेरी संसाररूपी पिपासाको हरिकथारूपी महौषधि द्वारा दूर कर उसके स्थान पर कृष्ण-पादपद्मोंकी सेवाकी पिपासाको पैदा की है, वे नित्यसिद्ध, अतिमर्त्य आचार्यके चरण-कमल ही मेरे नित्यकालके लिये आश्रय रहें । मैं उनके श्रीचरण-कमलोंकी अलौकिक महिमाका गान करता हुआ जीवनकी शेष घड़ियोंको व्यतीत कर सकूँ, गुरु-भ्राताओंके निकट आज मेरी यही प्रार्थना है । हरिकथा श्रवणसे विमुख विश्वको नवीन कौशल द्वारा हरिपादपद्ममें आकर्षण करनेकी चेष्टा उनकी अद्वितीय है । आजकल उनके ही अनुगत हजारों भक्त सारे विश्वमें श्रीचैतन्य-वाणीके प्रचार द्वारा उनकी ही अद्वितीय वर्णनातीत महिमाका गान कर रहे हैं । वे वैकुण्ठसे अपने आश्रितोंको शक्ति प्रदान कर नित्यकाल अपनी अमन्दोदया (जो दया कभी भी अहित न करे) का प्रचार करते हैं एवं करते रहेंगे ।

अनुवादक:—श्रीओ३म् प्रकाश ब्रह्मचारी; 'विशारद'

अनुराग

जो मन श्याम-सरोवर न्हाहि ।
बहुत दिनन को जर्‌यो बर्‌यो तूँ, तब ही भले सिराहि ॥

नयन वयन कर चरन कमल से, कुण्डल मकर समान ।
अलकावली सिवाल जाल तहँ, भौंह मीन मो जान ॥

कमठ पीठ दोउ भाग उरस्थल, सोभित दीप नितम्ब ।
मनि मुकुता आभरन बिराजत, ग्रह नछत्र प्रतिबिम्ब ॥

नाभि भँवर त्रिवली तरङ्ग, झलकत सुन्दरता वारि ।
पीत बसन फहरानि उठी जनु, पदुम रेनु छबि धारि ॥

सारस सरिस सरस रसना रव, हंसक धुनि कलहंस ।
कुमद दाम बग पंगति बैठी, कविकुल करत प्रसंस ॥

क्रीड़ा करति जहाँ गोपी जन बैठि मनोरथ नाव ।
बार-बार यह कहत 'गदाधर', देह संवारी दाँव ॥

जैव-धर्म

सैंतीसवाँ अध्याय

शृंगार-रसविचार

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ६, संख्या ९-१०, पृष्ठ २११ से आगे]

आज विजयकुमार कलके श्रवण किये हुए भावोंका आस्वादन करते-करते श्रीगुरुदेवके चरणोंमें उपस्थित हुए तथा उनको प्रणाम कर बोले—प्रभो ! मैंने विभाव, अनुभाव, सात्त्विक-भाव तथा व्यभिचारी-भाव—इन सबको समझ लिया है। स्थायी भावका स्वरूप भी समझ गया। परन्तु इन पूर्वोक्त चार प्रकार की सामग्रियोंका स्थायी भावसे संयोग करके भी रसका उदय नहीं कर पाता हूँ। इसका कारण क्या है ?

गोस्वामी—विजय ! शृङ्गार नामक रसका स्वरूप जान लेने पर ही स्थायी भावमें रसोदय कर सकोगे।

विजय—शृङ्गार किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—अतिशय शोभनमय मधुर रसका नाम ही 'शृङ्गार' है। वह दो प्रकारका होता है—विप्रलंभ और संभोग।

विजय—विप्रलम्भका लक्षण जानना चाहता हूँ।

गोस्वामी—मिलन या वियोग किसी भी अवस्था में नायक और नायिका जब परस्पर आलिंगन और चुम्बन आदि नहीं कर पाते जिसे वे चाहते हैं, तब उसके अभावमें जो भाव सुन्दर रूपसे प्रकटित होता है, वह सम्भोगके लिये पुष्टिकारक विप्रलंभ भाव कहलाता है। विप्रलंभका अर्थ है—विरह या वियोग।

विजय—विप्रलम्भ किस प्रकार सम्भोगकी पुष्टि करता है ?

गोस्वामी—जिस प्रकार रंगे हुए वस्त्रको फिरसे उसी रङ्गमें रङ्गा जाय तो उसकी उत्तरोत्तर प्रचुरतर उज्ज्वलता ही बढ़ती है, उसी प्रकार वियोग या विरह द्वारा सम्भोगका रसोत्कर्ष होता है। विप्रलम्भके बिना सम्भोगकी पुष्टि नहीं होती।

विजय—विप्रलम्भ कितने प्रकारका होता है ?

गोस्वामी—पूर्वराग, मान, प्रेमवैचित्य और प्रवास भेदसे विप्रलम्भ चार प्रकारका होता है।

विजय—पूर्वराग किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—नायक और नायिकाके मिलनसे पूर्व दर्शन और श्रवण आदिसे जो रति उत्पन्न होती है, उसे पूर्वराग कहते हैं।

विजय—दर्शनका यहाँ तात्पर्य क्या है ?

गोस्वामी—कृष्णको साक्षात दर्शन करना, चित्रपटमें उनका रूप देखना और स्वप्नमें उनका दर्शन करना—यह सब दर्शन है।

विजय—श्रवण किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—बन्दी, दूती और सखी—इनके मुख से तथा गीत आदि के द्वारा जो सुना जाता है, उसे श्रवण कहते हैं।

विजय—इस रतिके उदय होनेका हेतु क्या है ? यह कैसे उत्पन्न होती है ?

गोस्वामी—पहले स्थायीभाव प्रकरणमें अभियोग, विषय, सम्बन्ध और अभिमान आदिको रतिके आविर्भावका हेतु बतलाया गया है, इस पूर्वरागमें भी उनको ही हेतु कहा जा सकता है।

विजय—व्रजनायक और व्रजनायिका—दोनोंमें किसको पहले पूर्वराग होता है ?

गोस्वामी—इसमें अनेक प्रकारके विचार हैं। साधारण स्त्री और पुरुष, इन दोनोंमेंसे स्त्रीमें लज्जा आदि अधिक होती है, इसलिये पुरुष ही पहले स्त्रीकी खोज करता है। परन्तु स्त्रियोंमें प्रेम अधिक होनेके कारण मृगनयनियोंमें पूर्वराग पहले होता है। भक्ति शास्त्रमें ऐसा कहा गया है कि भक्तमें पूर्वराग पहले

जन्मता है। भगवानका राग पीछेमें उदित होता है। व्रजदेवियाँ भक्तोंकी चरम सीमा होनेके कारण उनमें पूर्वराग अधिक सुष्ठुरूपसे पहले होता है। इस विषय में प्राचीन उक्ति है—'सबसे पहले नारी अनुरक्त होती है, उसीके इशारेसे पीछेमें पुरुष अनुरक्त होता है। यदि दोनोंका समान प्रेम होता है, तब इस क्रमका उलट-फेर होने पर भी कोई दोष नहीं होता।

विजय—पूर्वरागके संचारी भावोंको बतलानेकी कृपा करें।

गोस्वामी—व्याधि, शङ्का, असूया, श्रम, क्लम, निर्वेद, औत्सुक्य, दैन्य, चिन्ता, निद्रा, प्रबोधन, विषाद, जड़ता, उन्माद, मोह और मृत्यु आदि उसके व्यभिचारी भाव हैं।

विजय—पूर्वराग कितने प्रकारका होता है ?

गोस्वामी—पूर्वराग तीन प्रकारका होता है—प्रौढ़, समञ्जस और साधारण।

विजय—प्रौढ़ पूर्वराग किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—समर्था रति रूप पूर्वराग ही प्रौढ़ पूर्वराग है। इस रागमें लालसासे मरण तक दस-दशाएँ भी हो सकती हैं। पूर्वरागकी प्रौढ़ताके कारण इसमें उदित दशाएँ भी प्रौढ़ होती हैं।

विजय—दस दशाएँ कौन-कौन हैं ?

गोस्वामी—

> लालसोद्वेग जागर्यातानवं जड़िमात्र तु।
> वैयग्र्यं व्याधिरुन्मादो मोहो मृत्युर्दशा दश॥
>
> (उज्ज्वलनीलमणि पू. प्र./ ६)

अर्थात् लालसा, उद्वेग, जागर्य, तानव, जड़ता, व्यग्रता, व्याधि उन्माद, मोह और मृत्यु—ये दस दशाएँ हैं।

विजय—लालसा कैसी होती है ?

गोस्वामी—अभीष्ट प्राप्तिकी तीव्र आकांक्षाको 'लालसा' कहते हैं। उसमें उत्सुकता, चपलता, घूर्णा और श्वासादि लक्षित होते हैं।

विजय—उद्वेग किसे कहते हैं।

गोस्वामी—मनकी चंचलता ही 'उद्वेग' है। इसमें दीर्घनिःश्वास, चपलता, चिन्ता, अश्रु, वैवर्ण्य, और स्वेद आदि उदित होते हैं।

विजय—जागर्य किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—जागर्यका अर्थ निद्रा नहीं आनेसे है। इसमें स्तंभ, शोष आदि राग आदि उत्पन्न होते हैं।

विजय—तानव किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—शरीरका दुबला-पतला होना ही 'तानव' है। इसमें दुर्बलता और मस्तिष्क भ्रम आदि उदित होते हैं। कोई-कोई तानवके स्थान पर 'विलाप' पाठ बतलाते हैं।

विजय—जड़ता किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—भला-बुराके ज्ञानका अभाव, प्रश्न करने पर अनुत्तर तथा दर्शन और श्रवणशक्तिका अभाव होनेसे 'जड़ता' या 'जड़िमा' होती है।

विजय—व्यग्रता (वैयग्र) किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—भावविकार-समूह बाहरमें प्रकाशित न होने पर गांभीर्य होता है, उसमें जो विक्षोभ और असहिष्णुता होती है, उसे 'व्यग्रता' कहते हैं। इसमें विवेक, निर्वेद, खेद और असूया होती है।

विजय—व्याधि किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—जिसमें अभीष्ट वस्तुकी अप्राप्तिसे शरीरका पीलापन और महातापरूप चिह्न प्रकट होते हैं, उसे 'व्याधि' कहते हैं। इसमें शीत, स्पृहा, मोह, दीर्घ निःश्वास और पतन (गिरना) आदि अनुभाव प्रकाशित होते हैं।

विजय—उन्माद किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—निर्वेद, विषाद और दैन्य आदि भावों द्वारा आक्रान्त हुए चित्तमें अपनी सभी अवस्थाओंमें, सब समय और सब जगह तन्मनस्क होनेके कारण (अभीष्ट वस्तुके चिन्तनमें तन्मय होने के कारण) एक वस्तुमें दूसरी वस्तुका भान (जैसे तमाल वृक्षको कृष्ण समझकर आलिंगन करना) रूप भ्रम ही 'उन्माद' कहलाता है। इसमें इष्टके प्रति द्वेष, दीर्घनिःश्वास, निमेष और विरह आदि अनुभाव प्रकाशित होते हैं।

विजय—मोह किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—चेतना-शून्य अवस्था ही 'मोह' है। इसमें निश्चलता और पतन (मूर्च्छित होकर गिर जाना) आदि अनुभाव प्रकट होते हैं।

विजय—मृत्यु कैसी होती है ?

गोस्वामी—पत्र-प्रेरण और सखी द्वारा संवाद-प्रेरण आदि उपायोंका अवलम्बन करने पर भी यदि कान्तके साथ समागम न हो, तब ऐसी दशामें कामबाणकी पीड़ासे मरणका उद्यम होता है। मृत्युमें अपनी प्रियवस्तुओंको सखियोंके निकट समर्पण करना, भृङ्ग, मन्द पवन, ज्योत्स्ना, कदम्ब, मेघ, विद्युत् मयूर और कदम्ब आदि अनेक उद्दीपन विभाव प्रकट होते हैं।

विजय—अब समंजस पूर्वराग किसे कहते हैं—बतलानेकी कृपा करें।

गोस्वामी—समंजस पूर्वराग समंजसा रतिका स्वरूप है अर्थात् संगमसे पूर्व जो पूर्वराग पैदा होता है। इसमें अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण कीर्तन, उद्वेग, विलाप, उन्माद, व्याधि जड़ता और मृत्यु-ये दश दशाएँ क्रमशः प्रकट हो सकती हैं।

विजय—यहाँ अभिलाषका क्या रूप है ?

गोस्वामी—प्रियव्यक्तिसे मिलनेके लिये जो चेष्टा होती है, उसे अभिलाष कहते हैं। इसमें अपने शरीर को अलंकृत करना, किसी बहानेसे प्रियतमके निकट जाना और उसके प्रति अपना अनुराग प्रकट करना--ये अनुभव प्रकट होते हैं।

विजय—यहाँ चिन्ताका स्वरूप कैसा होता है ?

गोस्वामी—अभीष्ट वस्तुके प्राप्ति-विषयक उपायों-का (विप्रद्वारा प्रियतमके पास अपनी अवस्था जानने अथवा पत्र भेजने आदिके विषय) में ध्यान ही 'चिन्ता' है। इस दशामें शय्याके ऊपर इधर-उधर बार-बार करवटें बदलना, दीर्घनिःश्वास छोड़ना, एक टकसे देखते रहना आदि लक्षण प्रकाश पाते हैं।

विषय—यहाँ स्मृति किसे कहा गया है ?

गोस्वामी—दर्शन और श्रवण द्वारा उपलब्ध हुए प्रियतम, उनके भूषण, उनकी लीला और विनोद आदिका चिन्तन ही 'स्मृति' है। इसमें कम्प, अंगोंका विवश होना, अंगोंका वैवर्ण्य, वाष्प त्याग और दीर्घनिःश्वास आदि अनुभाव लक्षित होते हैं।

विजय—गुणकीर्तन किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—सौन्दर्य आदि गुणोंकी प्रशंसा करने को 'गुण कीर्तन' कहते हैं। इसमें कम्प, रोमांच और गद्-गद् आदि अनुभव प्रकट होते हैं। उद्वेग, विलापके साथ उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृति (मृत्यु) ये छः, समंजसा रतिमें जहाँ तक प्रकाशित होते हैं, समंजसा-पूर्वरागमें भी वे उतना ही प्रकाशित होते हैं।

विजय—अब साधारण-पूर्वरागका लक्षण बतलाइये ?

गोस्वामी—जैसी साधारणी रति होती है, ठीक उसी प्रकार साधारण समंजस राग भी होता है। इसमें विलाप तक छः दशाएँ अतिशय कोमलरूपमें उदित होती है। उनके उदाहरण अत्यन्त सहज हैं, इसलिये उनको बतलानेकी आवश्यकता नहीं समझता। पूर्वरागमें परस्पर वयस्योंके हाथ कामलेखपत्र और माल्यादि भेजे जाते हैं।

विजय—कामलेख कैसा होता है ?

गोस्वामी—प्रेम प्रकाशक लेख या पत्र कामलेख कहलाता है। यह दो प्रकारका होता है-साक्षर और निरक्षर।

विजय—निरक्षर कामलेख किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—किसी लालरङ्गके पत्ते पर नख द्वारा अंकित अर्द्धचन्द्रका चिह्न हो, उस पर कोई अक्षर आदि नहीं अंकित रहे-ऐसे लेखको निरक्षर कामलेख कहते हैं।

विजय—साक्षर कामलेख किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—प्राकृत भाषामें अपने हाथोंसे अपनी अवस्थाका वर्णन करते हुए जो पत्र नायक और नायिका परस्पर भेजा करते हैं—उसे साक्षर कामलेख कहते हैं। गैरिक शिलासे उत्पन्न या अतिशय लाल-रङ्गके पुष्पोंको निचोड़नेसे निकले हुए रङ्गको स्याहीके

स्थान पर प्रयोग कर कामलेख लिखा जाता है। इसमें बड़े-बड़े पुष्पदलको पत्र (कागजके स्थान पर) बनाया जाता है, कुंकुम द्रव द्वारा अक्षर लिखे जाते हैं तथा वह पद्मके डण्ठलसे निकले हुए सूत्रसे बँधा हुआ होता है।

विजय—पूर्वरागका क्रम किस प्रकार होता है ?

गोस्वामी—किसी किसीका कहना है कि सबसे पहले नयन प्रीति होती है। उसके बाद क्रमशः चिन्ता, आसक्ति, संकल्प, नींद न आना, कृशता, विषय निवृत्ति, लज्जानाश, उन्माद, मूर्च्छा और मृत्यु—इस प्रकार कामदशा हुआ करती है। नायक और नायिका दोनोंमें ही पूर्वराग होता है। पहले नायिकामें और पीछेसे नायक कृष्णमें पूर्वराग उदित होता है।

विजय—मान किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—परस्पर अनुरक्त दम्पति या नायक-नायिका एक जगह रहने पर भी उनके अभीष्ट (इच्छित) आलिंगन, दर्शन, चुम्बन और प्रियभाषण आदिके प्रतिबन्धक (बाधा देनेवाले) भावको 'मान' कहते हैं।

विजय—मानका आश्रय क्या है ?

गोस्वामी—मानका आश्रय प्रणय है। प्रणयके पहले 'मान' नामक रस नहीं होता। होने पर संकोच होता है। मान दो प्रकारका होता है—सहेतु और निर्हेतु।

विजय—सहेतु मान किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—जब नायक किसी विपक्ष या तटस्थ नायिकाके प्रति विशेष प्रीतिका व्यवहार करता है, तब उसे देखकर या सुनकर नायिकाके हृदयमें जो ईर्ष्याकी भावना पैदा होती है, वही ईर्ष्या प्रणय-प्रधान होने पर सहेतु मान होता है। इस विषयमें प्राचीन मत यह है कि स्नेहके बिना भय नहीं होता। प्रणयके बिना ईर्ष्या नहीं होती। अतएव हर प्रकारका मान नायक-नायिकाका प्रेम-प्रकाशक होता है। जिस नायिकाके हृदयसे सुसख्य आदि भाव विराजमान होता है, वही नायिका अपने प्रति अनुरक्त नायकको किसी दूसरी युवतीके प्रति प्रीति करते देखकर बेचैन हो उठती है। द्वारकामें एक समय श्रीकृष्णने श्रीरुक्मिणीजीको एक पारिजात पुष्प दिया। उसे सुनकर भी सत्यभामाके सिवा किसी भी दूसरी महिषीके हृदयमें 'मान' उत्पन्न नहीं हुआ। यहाँ विपक्षवैशिष्ट्य अनुमान कर सत्यभामाको मान हुआ था।

विजय—विपक्षवैशिष्ट्य अनुभव कितने प्रकारके होते हैं ?

गोस्वामी—श्रुत, अनुमित और दृष्टके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं।

विजय—श्रुत किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—प्रिय सखी या शुकपक्षीके मुखसे सुननेको श्रुत-विपक्षवैशिष्ट्य कहा जाता है।

विजय—अनुमित-विपक्षवैशिष्ट्य किसे कहते हैं?

गोस्वामी—भोगांक (अन्य नायिकाका सम्भोग चिन्ह), गोत्रस्खलन (विपक्षकी-नायिकाका नाम उच्चारण) और स्वप्न दर्शनसे जो अनुमान होता है, उसे अनुमित-विपक्षवैशिष्ट्य कहते हैं। प्रिय व्यक्तिके तथा विपक्षके शरीरमें जो सम्भोग चिन्ह देखा जाता है, वही 'भोगाङ्क' है। विपक्षकी नायिकाका नाम उच्चारण कर नायिकाको बुलानेको 'गोत्रस्खलन' कहते हैं। इससे नायिकाको मरणसे भी अधिक दुःख होता है।

विजय—गोत्रस्खलनका उदाहरण सुनना चाहता हूँ।

गोस्वामी—एक समय कृष्ण श्रीमती राधाके साथ विहार करनेके पश्चात् अपने घरको लौट रहे थे। अकस्मात् रास्तेमें चन्द्रावलीसे भेंट हो गयी। श्रीकृष्णने चन्द्रावलीको सामने देख कर पूछा—हे राधे ! तुम कुशल से हो ? कृष्णकी बात सुन कर चन्द्रावलीने भी कहा—अहे कंस ! तुम कुशल से हो ? कृष्णने विस्मित होकर कहा—'सुन्दरि ! तुम्हारा इस प्रकार विपरीत ज्ञान क्यों हुआ ? (अथवा हे मूढ़मति ! यहाँ पर तुमने कंसको कहाँ देखा कि कंसका

कुशल पूछ रहो हो ?) चन्द्रावलीने तमक कर उत्तर दिया—फिर तुमने ही यहाँ पर राधाको कहाँ देखा ? तब कृष्ण समझ गये कि ये तो चन्द्रावली हैं, मैंने भ्रमवशतः इनको ही राधाके नामसे सम्बोधित किया है। इस प्रकार अपना भ्रम समझकर वे बड़े लज्जित हुए और अपना मुख अवनत कर लिया; साथ ही चन्द्रावलीकी तात्कालीन इर्ष्योत्थ वाक् चातुरीको देख मन्द-मन्द मुसकराने लगे—ऐसे हरि (सर्वक्लेश हारो) तुम लोगोंकी रक्षा करें।

विजय-स्वप्नदृष्ट विपक्षवैशिष्ट्य किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-कृष्ण और विदुषकका स्वप्नाचरण ही स्वप्नदृष्ट विपक्ष-वैशिष्ट्यका उदाहरण है। स्वप्न—एक समय क्रीड़ाकुंजमें चन्द्रावलीके साथ विहारके उपरान्त श्रीकृष्ण चन्द्रावलीके साथ एक ही शैय्या पर सोते समय स्वप्नमें बोले—हे राधे ! मैं शपथ पूर्वक कह रहा हूँ कि तुम्ही मेरी प्रियतमा हो, तुम ही मेरे हृदयमें हो, बाहर भी हो, तुम ही मेरे आगे और पीछे भी हो, और तो क्या कहूँ तुम्हीं मेरे गृहमें तथा श्रीगोवर्द्धन आदि शैलतटके वनोंमें विराज करती हो।' रातमें श्रीकृष्णके मुखसे ऐसे स्वप्न वाक्योंको सुनकर चन्द्रावली मानिनी होकर उस शय्यासे उठ खड़ी हुईं। विदूषक स्वप्न—क्रीड़ाकुंजमें चन्द्रावली और कृष्ण सुखपूर्वक विहार कर रहे हैं। उसी कुंजके बाहर एक वेदी पर सोये मधुमङ्गलके स्वप्न-वचनोंको सुनकर व्यथिता चन्द्रावलीको लक्ष्यकर दूसरे कुंजमें पद्मा और शैव्या बातचीत कर रही हैं। पद्माने कहा-सखि! देखो ! बाहर सोये मधुमङ्गलके स्वप्न वाक्यको सुनकर चन्द्रावलीका मुख कैसा मलीन हो गया है, वे मुख नीचाकर संतापसे जल रही हैं। मधुमङ्गलके स्वप्नवाक्य—'हे माधवि कृष्ण चाटुकारी द्वारा पद्माकी सखी चन्द्रावलीको बंचना कर रहे है, अतएव तुम शीघ्र राधाका यहाँ अभिसार करानेका प्रयत्न करो, कोई चिन्ता न करो।

विजय-दर्शन किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-दूसरी नायिकाके साथ नायकको क्रीड़ा करते देखनेको दर्शन कहते हैं।

विजय-निर्हेतुक मान किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-नायक और नायिकामें वस्तुतः कोई कारण न रहने पर भी किसी प्रकार कारण-आभासको आश्रय करके यह प्रणय ही वृद्धि प्राप्तकर निर्हेतु मान अवस्थाको प्राप्त होता है। इसीलिये पण्डितजन मानको प्रणयका परिणाम बतलाते हैं और निर्हेतु मानको प्रणयका ही विलासातिशयरूप वैभव कहते हैं। निर्हेतु मानको ही वे प्रणय-मान कहते हैं। प्राचीन पण्डित यह भी कहते हैं कि सर्पकी स्वभाव सिद्ध कुटिल गतिकी तरह प्रेमकी गति भी वक्र (टेढ़ी) ही होती है। इसीलिये अहेतु (कारण रहे, या कारण न रहे, दोनों अवस्थाओंमें) दो प्रकारके मान नायक-नायिकाओंमें उदित होते हैं। अवहित्था (भाव छिपाना) ही इस रसका व्यभिचारी भाव है।

विजय-निर्हेतुक मान कैसे शान्त होना है ?

गोस्वामी—निर्हेतुक मान अपने-आप ही शान्त होता है, किसी उपाय आदिकी आवश्यकता नहीं होती। अपने-आप हास्य-उदयके साथ शान्त हो जाता है। परन्तु सहेतुक मान साम, भेद, क्रिया, दान, नति, उपेक्षा और रसान्तर आदि यथायोग्य अवलम्बित होने पर सहेतुक मान भी शान्त होता है। वाष्पमोक्षन (आँसुओंका पोंछा जाना) तथा हास्य आदि ही मानके शान्त होनेके लक्षण हैं।

विजय-साम किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-प्रियवाक्य रचना अर्थात् प्रियाको मनानेके लिये मीठी-मीठी बातें बनाना ही 'साम' कहलाता है।

विजय-भेद किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-भेद दो प्रकारके होते हैं अर्थात् भावभंगी द्वारा अपना माहात्म्य प्रकाश और सखियोंके द्वारा उपालंभ अर्थात् तिरस्कार-प्रयोग।

विजय-दान किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-छलपूर्वक भूषण आदि देनेको 'दान' कहते हैं।

विजय-नति किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—दीनतापूर्वक पैरोंमें पतन होनेको 'नति' कहते हैं।

विजय—उपेक्षा किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—साम आदि उपायोंके द्वारा मानभंग होते न देख कर जो अवज्ञा होती है (ऐसा भाव कि छोड़ो, देखें कबतक मान करती है आदि) उसे 'उपेक्षा' कहते हैं। अन्यार्थ सूचक वचनोंसे प्रसन्न करनेको भी कोई-कोई उपेक्षा कहते हैं।

विजय—आपने जिस रसान्तर शब्दका प्रयोग किया है, उसका अर्थ क्या है ?

गोस्वामी—अचानक किसी भय उत्पन्न करनेवाली बात या दृश्य उपस्थित करनेका नाम 'रसान्तर' है। यह रसान्तर दो प्रकारका होता है—स्वयं घटित और बुद्धिपूर्वक नायक द्वारा रचित। जो अपने-आप घटे-उसे 'स्वयं घटित' कहते हैं और प्रखर बुद्धि द्वारा जो किया जाय वह बुद्धिपूर्वक कहलाता है। स्वयं घटित—एक दिन कृष्ण द्वारा बहुत प्रकारसे मनानेपर भी मानिनी भद्राका मान किसी प्रकार भंग नहीं हो रहा था। अचानक उसी समय भीषण मेघ-गर्जन सुनकर भद्रा बहुत ही डरी और सामने बैठे कृष्णके गलेसे झूल गयी। बुद्धिपूर्वक—एक समय महामानिनी राधाको मनानेके लिये दूसरा कोई उपाय न देखकर परम कौतुकी कृष्णने बड़ा ही सुन्दर छल किया। उन्होंने अपने हाथोंसे फूलोंका एक सुन्दर हार गूँथ कर उसे श्रीमतीके गलेमें डाल दिया। श्रीमतीजीने क्रोधसे उस मालाको अपने गलेसे उतार कर दूर फेंक दिया, दैववश वह माला कृष्णके ऊपर गिरी। उस समय कृष्णने आँखोंको सिकुड़ाते हुए मुखसे ऐसा भाव प्रकट किया मानो उनको बड़ी चोट लग गयी हो और मुख उदास बनाकर एक जगह बैठ गये। ऐसा देख कर राधा घबड़ा गयीं और व्यग्र होकर अपने दोनों हाथोंसे कृष्णके कन्धोंको पकड़ लिया। कृष्णने भी हँसकर राधाको गाढ़े आलिंगनके पाशमें आबद्ध कर लिया।

विजय—क्या किसी दूसरे उपायसे भी मानभंग होता है ?

गोस्वामी—विशेष देश, विशेष काल एवं मुरली-ध्वनि द्वारा साम आदि उपायोंके बिना भी व्रज-ललनाओंका मान भङ्ग होता है। लघु मान अल्प प्रयाससे ही शान्त हो जाता है। मध्य मान बड़े प्रयाससे शान्त होता है। दुर्जयमानको उपाय द्वारा शान्त करना कठिन है। मानकी दशामें गोपियाँ कृष्णके लिये इन शब्दोंका प्रयोग करती हैं—वाम, दुर्शील-शिरोमणि, कितवराज, खल-श्रेष्ठ, महाधूर्त्त, कठोर, निर्लज्ज, अति-दुर्ललित, गोपीकामुक, रमणी-चोर, गोपी-धर्म-नाशक, गोपसाध्वीविडम्बक, कामुकेश्वर, गाढ़तिमिर, श्याम, वस्त्रचोर, गोवर्द्धन, उपत्यका-तस्कर।

विजय—प्रेम-वैचित्य किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—प्रियतमके निकट रहने पर भी प्रेम-उत्कर्षता-स्वभाववशतः विरहोत्थ जो आर्त्ति होती है, उसे प्रेम-वैचित्य कहते हैं। प्रेम-उत्कर्ष द्वारा एक प्रकारकी घूर्णा (चित्तकी विवशता या विह्वलता) उदित होती है, वही भ्रान्तिरूपमें कृष्ण-वियोगकी बुद्धि उत्पन्न कर देती है। चित्तका अस्वाभाविक भाव ही वैचित्य है।

विजय—प्रवास किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—मिलनके पश्चात् नायक और नायिकाके बीच देशान्तर, ग्रामान्तर, रसान्तर और स्थानान्तररूप व्यवधान-बाधाको 'प्रवास' कहते हैं। इस प्रवासरूप विप्रलंभमें हर्ष, गर्व, मद, और व्रीडाको छोड़कर श्रृङ्गार-रसके उपयोगी समस्त व्यभिचारी भाव होते हैं। बुद्धिपूर्वक प्रवास और अबुद्धिपूर्वक प्रवास—ये दो प्रकारके प्रवास होते हैं।

विजय—बुद्धिपूर्वक प्रवास कैसा होता है ?

गोस्वामी-कार्यवश कहीं दूर चले जानेका नाम बुद्धिपूर्वक प्रवास है। अपने भक्तोंको (वृन्दावनके स्थावर-जंगम, पाण्डवों श्रुतदेव और मैथिल आदि

सबको) सुखदान, सदुपदेश दान, और उनकी कामनाओंकी पूर्त्ति आदि ही श्रीकृष्णके कार्य हैं। कुछ दूर और सुदूर गमन भेदसे प्रवास दो प्रकारका होता है। सुदूर प्रवास तीन प्रकारका होता है—भूत, भविष्यत और वर्तमान। सुदूर प्रवासमें परस्पर संवादका आदान-प्रदान होता है।

विजय—अबुद्धिपूर्वक प्रवास कैसा होता है ?

गोस्वामी—पराधीनतावश जो सुदूर प्रवास होता है उसे अबुद्धिपूर्वक प्रवास कहते हैं। दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य भेदसे यह पारतंत्र्य अनेक प्रकारका होता है। प्रवासमें दस दशाएँ उदित होती हैं—चिन्ता, जागर, उद्वेग, तानव, मलिनांगता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु। प्रवासविप्रलम्भकी अवस्थामें कृष्णमें भी ये दशाएँ उपलक्षणके रूपमें उदित होती हैं। विजय! नाना प्रकार प्रेमभेदके कारण उदित दशाओंका नानाप्रकारत्व अवश्य स्वीकृत होने पर भी यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया। परन्तु स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग भाव और महाभाव तक इस प्रेम पर्यायके कार्यके रूपमें ये सब दशाएँ अधिकांश ही साधारण रूपमें समुदित हो सकती हैं। अधिकन्तु मोहन दशामें श्रीराधामें असाधारण दशा प्रकटित होती है—इसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है। किसी-किसी रसशास्त्रकारने 'करुण' को एक पृथक् विप्रलम्भ माना है, परन्तु करुण विषयक विप्रलम्भ प्रवासका ही प्रकार भेद होनेके कारण यहाँ पृथक् रूपमें उसका वर्णन नहीं किया गया।

श्रीगुरु गोस्वामीजीके विप्रलम्भ विषयक उपदेशोंके ऊपर विचार करते-करते विजयकुमार मन-ही-मन कहने लगे—विप्रलम्भरस स्वतःसिद्ध रस नहीं है, वह केवल सम्भोग रसकी पुष्टि करता है। यद्यपि जड़बद्ध जीवके लिये विप्रलम्भरस विशेषरूपसे उदित होकर अन्तमें सम्भोग रसके अनुकूल होता है, तथापि नित्यरसमें कुछ-कुछ विप्रलम्भ रहेगा ही, नहीं तो विचित्रलीला सम्भव नहीं हो सकेगी।

श्रीरामनवमी

पिछले ११ चैत्र, २५ मार्च, शनिवारको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके समस्त मठोंमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आविर्भाव तिथिका विधिपूर्वक पालन किया गया है। विशेषकर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें उक्त दिवस सवेरे मंगलारतिके पश्चात्से लेकर दोपहरके १२ बजे तक लगातार श्रीवाल्मीकि रामायणका पारायण चलता रहा। श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्पादक श्रीत्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने पारायण किया।

दोपहरमें श्रीरामचन्द्रजीके आविर्भावके समय विराट संकीर्तनके बीच भोगराग तथा अर्चन सम्पन्न होने पर दर्शकोंको अनुकल्पका प्रसाद वितरण किया गया।

शामके चार बजे त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजकी अध्यक्षतामें एक सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें श्रीकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीरसिकानन्द दासाधिकारी और श्रीहरिदास ब्रजवासी आदि वक्ताओंने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रकी विशेष-विशेष लीलाओंका सरस वर्णन कर श्रीरामलीलाके विविध पहलुओं पर सुन्दर प्रकाश डाला। अन्तमें सम्पादक महोदयने मर्यादा पुरुषोत्तम और लीला पुरुषोत्तमके सम्बन्धमें बड़ा ही सुन्दर और दार्शनिक विचार उपस्थित किया।

दूसरे दिन दोपहरको साधारण महोत्सवमें निमंत्रित सैकड़ों लोगोंको श्रीरामचन्द्रका विचित्र प्रसाद वितरण किया गया।